HINDI NAVJAGRAN AUR STRI CHINTAN ‘SHRINKHALA KI KADIYAN’ KE SANDARBHA MEIN

A DISSERTATION SUBMITTED DURING 2019 TO THE UNIVERSITY OF HYDERABAD IN PARTIAL FULFILMENT OF THE AWARD OF **MASTER OF PHILOSOPHY** IN DEPARTMENT OF HINDI, SCHOOL OF HUMANITIES

BY

SUPRABHA MAHATO

(17HHHL03)

2019

UNDER THE SUPERVISION OF

DR. M. SHYAM RAO

DEPARTMENT OF HINDI

SCHOOL OF HUMANITIES

UNIVERSITY OF HYDERABAD

HYDERABAD, 500 046

INDIA

हिंदी नवजागरण और स्त्री चिंतन : ‘श्रृंखला की कड़ियाँ’ के संदर्भ में

(हैदराबाद विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में **एम. फिल.**
की उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध)

शोधार्थी

सुप्रभा महतो
(17HHHL03)

2019

निर्देशक

डॉ. एम. श्याम राव
हिंदी विभाग
मानविकी संकाय
हैदराबाद विश्वविद्यालय
हैदराबाद, 500 046
भारत

DECLARATION

I, **SUPRABHA MAHATO,** hereby declare that the dissertation **HINDI NAVJAGRAN AUR STRI CHINTAN 'SHRINKHALA KI KADIYAN' KE SANDARBHA MEIN [हिंदी नवजागरण और स्त्री चिंतन : 'श्रृंखला की कड़ियाँ' के संदर्भ में]** submitted by me under the guidance and supervision of **DR. M. SHYAMRAO** is a bona-fide research work which is also free from plagiarism. I also declare that it has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or Institution for the award of any degree or diploma. I hereby agree that my dissertation can be deposited in Shodhganga/INFLIBNET.

Date: Name: SUPRABHA MAHATO

Place: Reg. No. : 17HHHL03

____

Signature of the Student

CERTIFICATE

This is to certify that the dissertation entitled **HINDI NAVJAGRAN AUR STRI CHINTAN ‘SHRINKHALA KI KADIYAN’ KE SANDARBHA MEIN [हिंदी नवजागरण और स्त्री चिंतन : ‘श्रृंखला की कड़ियाँ’ के संदर्भ में]** submitted by **SUPRABHA MAHATO** bearing Reg. No. **17HHHL03** in partial fulfilment of the requirements for the award of **MASTER OF PHILOSOPHY** in **HINDI** is a bona-fide work carried out by her under my supervision and guidance which is a plagiarism free dissertation.

The dissertation has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or Institution for the award of any degree or diploma.

Signature of Supervisor
(Dr. M. Shyam Rao)

Head of the Department
(Prof. Sachidananda Chaturvedi)

Dean of the School
(Prof. Sarat Jyotsna Rani)

अनुक्रमणिका

		पृष्ठ संख्या
प्रस्तावना		**i-iv**
प्रथम अध्याय :	**नवजागरण और हिंदी नवजागरण**	**1-26**
	1.1 नवजागरण : स्वरूप और अवधारणा	
	1.2 भारतीय नवजागरण	
	1.2.1 भारतीय नवजागरण की अवधारणा और पृष्ठभूमि	
	1.2.2 भारतीय नवजागरण एवं यूरोपीय नवजागरण में भिन्नता	
	1.3 हिंदी नवजागरण की अवधारणा और पृष्ठभूमि	
	1.3.1 हिंदी नवजागरण हिंदी साहित्य के सन्दर्भ में	
	1.3.2 हिंदी नवजागरण के प्रति महादेवी वर्मा का दृष्टिकोण	
द्वितीय अध्याय :	**नवजागरणकालीन स्त्री चिंतन परंपरा**	**27-52**
	2.1 नवजागरणकालीन स्त्री चिंतन की भारतीय पृष्ठभूमि	
	2.2 हिंदी साहित्य और नवजागरणकालीन स्त्री चिंतन परंपरा	
तृतीय अध्याय :	**'श्रृंखला की कड़ियाँ' में स्त्री चिंतन**	**53-69**
	3.1 'श्रृंखला की कड़ियाँ' निबंधों का विवेचन : स्त्री-चिंतन की एक भूमिका	
उपसंहार		**70-74**
सन्दर्भ-सूची		**75-79**
शोध-आलेख प्रमाण पत्र		**80-81**

प्रस्तावना

प्रस्तावना

हिंदी नवजागरण और स्त्री चिंतन की भारतीय परंपरा के अध्ययन हेतु तमाम अकादमिक शोध से लेकर स्वतंत्र पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं लेकिन महादेवी के यहाँ नव-जागृत स्त्री-चेतना तथा उसका जो संघर्ष दिखाई पड़ता है, जिसका प्रमाण 'श्रृंखला की कड़ियाँ' है, को उपेक्षित छोड़ दिया जाता है। महादेवी वर्मा को प्रायः रहस्यवादी और आधुनिक मीरा जैसे सम्बोधन से उनकी गरिमा को सीमित कर दिया जाता है। विद्वानों ने महादेवी की कविता में रहस्य कहा है उसे उनके गद्य से समझा जाए तो उनका मूल भाव अधिक स्पष्ट होगा। नवजागरण कालीन परिस्थितियों में महादेवी वर्मा के स्त्री-जीवन और संघर्ष का अध्ययन करना जिसके आधार पर तत्कालीन स्त्री-चिंतन की धारा का मूल्यांकन करना मेरे शोध का उद्देश्य होगा। महादेवी के निबंध नारी चिंतन के पाश्चात्य दृष्टिकोण से प्रभावित न होकर, उनके अपने निजी अनुभवों और संघर्षों का प्रमाण है। महादेवी का अपना जीवन-संघर्ष भी वास्तव में नारी चिंतन की परंपरा में मील का पत्थर है। प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी वर्मा छायावाद के प्रतिनिधि कवियों में हैं। इसके अधिकांश निबंध 30 के दशक में प्रसिद्ध 'चाँद' पत्रिका के सम्पादकीय लेख के रूप में प्रकाशित हुए तथा बाद में सन् 1942 में यह सारे निबंध एक स्वतंत्र निबंध संग्रह के रूप में "श्रृंखला की कड़ियाँ" के नाम से प्रकाशित हुए । छायावादी सभी रचनाकारों ने पद्य और गद्य दोनों में लिखा किन्तु हमारा ध्यान मुख्यतः पद्य अथवा काव्य की ओर ही जाता है । अध्ययन-अध्यापन के लिए भी सामान्यतः कविताओं का उपयोग किया जाता है । छायावाद के सम्बन्ध में यह लगभग प्रचलित मान्यता है कि इस युग के रचनाकार कल्पना लोक में ही विचरण करते हैं जिसका सबसे ज्यादा आरोप महादेवी वर्मा पर लगाया जाता है। शोध के साथ-साथ हिंदी आलोचकों ने भी महादेवी वर्मा की कविता में संघर्ष की महक को अनुभव नहीं किया। हिन्दी नवजागरण के संदर्भ में इसी स्त्री चेतना को टटोलना सती प्रथा निषेध, विधवा विवाह, स्त्री शिक्षा जैसे तमाम कदम इस बात की ओर संकेत करते हैं कि भारतीय नवजागरण के उस दौर में नवजागरण के नायकों को स्त्री की दयनीय

स्थितियों को लेकर तमाम चिंताएं थी। इन्हीं सब चिंताओं के बरअक्स महादेवी वर्मा की कृति 'श्रृंखला की कड़ियाँ' का अध्ययन स्त्री-चिंतन के आईने से देखना मेरा शोध-कार्य का लक्ष्य होगा।

महादेवी वर्मा हिंदी साहित्य में नारी चिंतन परंपरा की उद्घोषिकाओं में है । स्त्री चिंतन-परंपरा में उन्हें उपेक्षित रखकर उस पर विचार करना अनुचित होगा। प्रस्तुत शोध न केवल स्त्री चिंतन परम्परा के क्रम में महादेवी वर्मा के साहित्य विशेषकर 'श्रृंखला की कड़ियाँ' के सन्दर्भ में उनका मूल्यांकन करेगा बल्कि स्त्री चिंतन-परम्परा का विकास हिंदी नवजागरणकालीन परिस्थितियों में कैसे हुआ यह भी देखना होगा क्योंकि साहित्य और समाज का अन्योन्यश्रित संबंध तो होता ही है। प्रस्तुत शोध से स्त्री चिंतन-परंपरा के भारतीय इतिहास को समझने में सहायता मिलेगी। आज उत्तराधुनिक समय विमर्शों का समय माना जाता है। ऐसे में यह शोध कार्य भारतीय इतिहास और समाज तथा उसकी चिंतन-परंपरा को समझने में प्रासंगिक और उपयोगी सिद्ध होगा । ऐतिहासिक तथ्यों के अभाव में कोई भी चर्चा अपने उचित गंतव्य तक नहीं पहुंच पाती है अतः प्रस्तुत शोध से प्राप्त तथ्य उत्तर आधुनिक युग में वर्तमान स्त्री विमर्श की बहस को एक सार्थक दिशा देने का प्रयास करेगा।

प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध **हिंदी नवजागरण और स्त्री चिंतन : 'श्रृंखला की कड़ियाँ' के सन्दर्भ में** को मैंने तीन अध्यायों में विभाजित किया है। पहला अध्याय 'नवजागरण और हिंदी नवजागरण' है। इस अध्याय में नवजागरण और हिंदी नवजागरण की अवधारणा और उसके स्वरूप को समझाते हुए उनके बीच संबंधों को रेखांकित किया गया है। साथ ही साथ हिंदी नवजागरण के प्रति महादेवी वर्मा के दृष्टिकोण का भी उल्लेख किया गया है ।

दूसरा अध्याय 'नवजागरणकालीन स्त्री चिंतन परंपरा' है। प्रस्तुत अध्याय में नवजागरण के परिपेक्ष्य में स्त्री चिंतन परंपरा विशेषकर भारत में और हिंदी नवजागरणकाल की स्त्री चिंतन परंपरा पर बात की गयी है।

तीसरा अध्याय ‘श्रृंखला की कड़ियाँ में स्त्री-चिंतन’ है। इस अध्याय में श्रृंखला की कड़ियाँ और स्त्री-चिंतन पर बात करते हुए स्त्री-चिंतन परंपरा को समझने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध में ‘श्रृंखला की कड़ियाँ’ का आलोचनात्मक विश्लेषण करते हुए हिंदी साहित्य के स्त्री-चिंतन और उसके महत्व को रेखांकित किया जाएगा। साथ ही ऐतिहासिक शोध-पद्धति का भी प्रयोग किया जाएगा क्योंकि प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध में भारतीय नारी चिंतन परम्परा को हिंदी नवजागरण से जोड़कर देखा गया है।

प्रस्तुत लघु शोध के संयोजन में बहुत से लोगों का साथ मिला। सबसे पहले मैं अपने माता-पिता के साथ चाचा जी और अपनी चार बहनों की ऋणी हूँ। जिनका सकारात्मक सहयोग जीवन के प्रत्येक पड़ाव में मुझे मिलता रहा। उच्च शिक्षा मेरे पिता का सपना था। अतः मेरे यहाँ तक पहुँचना मुझसे अधिक उनका परिश्रम है। मेरे शोध निर्देशक डॉ. एम. श्याम राव के प्रति मैं हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ, जिनके मार्गदर्शन और सहयोग के बिना यह शोध असंभव था। शोध-कार्य के दौरान जब-जब मैं निराश हुई, इन्होंने असीम धैर्यपूर्वक अपना विश्वास मुझ पर बनाते हुए मेरा मनोबल बढ़ाया और निरंतर उत्साहित किया। प्रस्तुत विषय पर लघु शोध-प्रबंध हेतु अनुमति प्रदान करने के लिए विभागाध्यक्ष प्रो. सच्चिदानंद चतुर्वेदी एवं शोध परामर्शदाता प्रो. गजेन्द्र पाठक के प्रति मैं आभार व्यक्त करती हूँ। जिनके सुझावपूर्ण सहयोग से इस लघु शोध-प्रबंध की निरंतरता बनी रही। इस लघु शोध को लघु शोध-प्रबंध का रूप देने में मेरे मित्रों का विशेष सहयोग रहा- सुरेन्द्र, कुमुद रंजन, लोकेन्द्र, एकता, आरती और पंकज इन सब के प्रति मेरा विशेष आभार।

\- सुप्रभा महतो

प्रथम अध्याय

नवजागरण और हिंदी नवजागरण

1.1 नवजागरण: स्वरूप और अवधारणा

1.2 भारतीय नवजागरण

1.2.1 भारतीय नवजागरण की अवधारणा और पृष्ठभूमि

1.2.2 भारतीय नवजागरण एवं यूरोपीय नवजागरण में विभिन्नता

1.3 हिंदी नवजागरण की अवधारणा और पृष्ठभूमि

1.3.1 हिंदी नवजागरण: हिंदी साहित्य के सन्दर्भ में

1.3.2 हिंदी नवजागरण के प्रति महादेवी वर्मा का दृष्टिकोण

प्रथम-अध्याय

नवजागरण और हिंदी नवजागरण

हिंदी साहित्य ही नहीं अपितु विश्व-साहित्य में भी नवजागरण एक महत्वपूर्ण घटना है अतः बहुत चर्चित भी है और आज भी नवजागरण केन्द्रित बहसें निरंतर जारी हैं। इसी क्रम में भारत के परिप्रेक्ष्य में भी नवजागरण संबंधी विभिन्न व्याख्याएं प्रस्तुत की गयी हैं। वस्तुतः साहित्य में समय और संदर्भ हमेशा नई व्याख्या प्रस्तुत करता है। यह बात हम नवजागरण के सन्दर्भ में भी कह सकते हैं। प्रस्तुत अध्याय में हम नवजागरण पर अब तक हुई चर्चाओं के आधार पर नवजागरण और विशेषकर हिंदी नवजागरण के संदर्भ में विचार-विमर्श किया जाएगा।

1.1 नवजागरण : स्वरूप और अवधारणा

वर्तमान सदैव मानव के नेत्रों के समक्ष रहता ही है, साथ ही साथ वह भविष्य की भी प्रतीक्षा करता रहता है परन्तु जब उसे अतीत की ओर झाँकना पड़ता है तब उसे एक विशेष आश्रय की आवश्यकता पड़ती है, उसी आश्रय का नाम इतिहास है।

"राष्ट्र के निर्माण और विकास में सामान्य ऐतिहासिक परम्पराएं महत्वपूर्ण होती हैं, यह निर्विवाद है। इसीलिए राष्ट्र के समकालीन परिदृश्य का विवेचन करते हुए पुराने इतिहास को छोड़ा नहीं जा सकता, न पुराने इतिहास का विवेचन समकालीन परिदृश्य की हमारी समझ से पूरी तरह मुक्त रह सकता है।"[1] नवजागरण या पुनर्जागरण एक ऐसी ही सांस्कृतिक अवस्था

---

[1] शर्मा, डॉ. रामविलास शर्मा, भारतीय नवजागरण और यूरोप, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली 1996, पृष्ठ संख्या -2

है जो बहुत से देशों के इतिहास में घटित होती रही है। भिन्न-भिन्न देशों में नवजागरण की अवधारणा का विकास विभिन्न ऐतिहासिक परिस्थितियों, कालों, विभिन्न क्षेत्रों और विभिन्न रूपों में हुआ है। भारत के इतिहास में उन्नीसवीं शताब्दी का दौर ऐसा था, जिसमें भारतीय समाज गुलामी से जकड़ी मानसिकता के विरुद्ध कई संघर्षों तथा संस्कृतियों के टकराव से गुजर रहा था। परिणामतः नवीन वैचारिक चेतना ने देश की सुषुप्ति को तोड़कर उसे नई स्फूर्ति प्रदान की, जिसे '**नवजागरण**' के नाम से अभिहित किया जाने लगा। हिंदी में 'नवजागरण' की संकल्पना प्रस्तुत करने का श्रेय डॉ. रामविलास शर्मा (1977, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण नामक पुस्तक) को जाता है। बाद में 1984 ई. में उन्होंने "भारतेंदु हरिश्चंद्र और हिंदी नवजागरण की समस्याएं" नामक एक और पुस्तक की रचना की। इन दोनों ग्रंथों में उन्होंने नवजागरण की धारणा को स्पष्ट किया। रामविलास शर्मा ने 'नवजागरण' पद-बंध की नवीनता तो स्वीकार की किन्तु धारणा के स्तर पर वे उसमें कोई नवीनता स्वीकार नहीं करते। अपितु वे उसका तात्पर्य 'रेनेसा' से लेते हैं। इस प्रकार हिंदी साहित्य में नवजागरण शब्द का प्रयोग सामान्यतः रेनेसा (**Renaissance**) के पर्याय के रूप में किया जाता है। रेनेसा यूरोप के मध्ययुग और आधुनिक युग के बीच की संक्रांति की अवस्था का द्योतक है। शाब्दिक अर्थ में जाएँ तो जागरण का अर्थ है- जागृत होना, नींद से जागना, सुषुप्त जनमानस में नवचेतना, स्वतन्त्र चिंतन, ऐसी चेतना जो पहले कभी न आई हो। नवजागरण शब्द; **जागरण** शब्द में **नव** विशेषण लगकर बना है, जिसका अर्थ किसी युग में विचार तथा व्यवहार के स्तर पर होने वाली नवीन चेतना या जागृति से है। '**नव**' शब्द का अर्थ– नया, नूतन, जीर्ण का उल्टा है और '**जागरण**' शब्द '**जागृ**' धातु से निर्मित है जिसका अर्थ जागना, जागा हुआ होना, जागृत अवस्था या जागते रहने की चेतना आदि है। "लाक्षणिक अर्थ में 'जागरण' वह अवस्था है जिसमें किसी जाति, देश, समाज आदि

को अपनी वास्तविक परिस्थितियों और उनके कारणों का ज्ञान हो जाता है और वह उन्नति और रक्षा के लिए सचेष्ट हो जाता है।" [2]

इस प्रकार समग्रता में देखें तो यह स्पष्ट होता है कि नवजागरण मनुष्य की चैतन्य अवस्था का वह प्रतीक है जिसमें मानव-जीवन तत्कालीन समाज, युग और परिस्थितियों में जकड़ी हुई मानसिक रूढ़ियों से स्वतंत्र होकर विचार-जगत की समस्त गतिविधियों में नवचेतना और नवजीवन शक्ति का स्पंदन करती है।

हिंदी में इस चेतना के लिए पुनर्जागरण, नवजागरण, पुनरुत्थान, धर्म-सुधार आंदोलन आदि शब्दों का प्रचलन रहा है। इन्हें समान अर्थ में देखे जाने की कुछ गलतियाँ भी की गई है, किन्तु इनमें पर्याप्त भेद है तथा इनके वैचारिक परिप्रेक्ष्य भी अलग-अलग हैं; डॉ. अमरनाथ के शब्दों में "इस युग में नए-नए अन्वेषण और आविष्कार हुए, धर्म और दर्शन का नया संस्करण किया गया, कला और विज्ञान की नयी साधना का समारंभ हुआ, राजनीतिक और समाज-व्यवस्था में नयी सांस्कृतिक चेतना का प्रसार हुआ।"[3] समग्रता में कहें तो एक नए यूरोप का जन्म हुआ। वस्तुतः मानवीय सभ्यता और संस्कृति के विकास को विभिन्न चरणों में रेखांकित किया जाना चाहिए। भारत-भूमि के संदर्भ में एक चरण उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में आए सामाजिक-सांस्कृतिक बदलाव के रूप में द्रष्टव्य है। आधुनिक संदर्भ में देखें तो अंग्रेजी शब्द रेनेसा (Renaissance) के पर्याय को ही नवजागरण माना जाता है। यह शब्द यूरोप के मध्य युग और आधुनिक युग के बीच की अवस्था का वाचक है। इस युग में पश्चिमी यूरोप मध्य-युगीनता के बंधनों से मुक्त होकर व्यक्तित्व-चेतना विकसित करने लग गया था, इसी में व्यक्ति-

[2] बल, डॉ मीरा रानी, राष्ट्रीय नवजागरण और हिंदी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994, पृष्ठ संख्या - 18

[3] डॉ. अमरनाथ, हिंदी आलोचना और पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, पृष्ठ संख्या -397

स्वतंत्रता की प्रतिष्ठा हुई । इसका प्रथम उन्मेष इटली में देखने को मिलता है। इसी संदर्भ में डॉ. रामविलास शर्मा कहते हैं कि- "सोलहवीं सदी में इटली के लोगों ने नए युग को ला रिनास्विता(पुनर्जन्म) कहना शुरु किया। अठारहवीं सदी में फ्रांस के विद्वानों ने उसे रेनेसा कहा। वहाँ से यह शब्द अंग्रेजी में आया। इटली के लोगों ने संस्कृति के पुनर्जन्म की बात इसलिए सोची थी कि तीसरी, चौथी, पाँचवीं सदियों में जर्मन हमलावरों ने उनकी प्राचीन रोमन सभ्यता का नाश कर दिया था। अब वह सभ्यता मानो नए सिरे से जन्म ले रही थी। इसलिए पुनर्जन्म की बात उनके मन में आई।"[4] संभवतः इटली की भांति भारत ने भी नई सभ्यता के युग, सांस्कृतिक परिवर्तन के युग को पुनर्जन्म व पुनर्जागरण कहा। पुनरुत्थान शब्द का प्रयोग भी रेनेसा के पर्याय रूप में है; परन्तु यह शब्द अंग्रेजी के रिवाईवलिज्म(Revivalism) के लिए रूढ़ हो गया है। रिवाईवलिज्म का अर्थ है अतीत की किसी प्रवृत्ति, विचार, मूल्य, परंपरा को पुन: स्थापित करना। उन्नीसवीं शताब्दी के जागरण के दौरान कई विचारकों ने विशेषत: आर्य समाज ने वेदों की ओर लौटने का मार्ग प्रशस्त किया। उनकी दृष्टि में वैदिक जीवन-पद्धति और विचार-दर्शन से ही वर्तमान समस्याओं से मुक्ति पाई जा सकती है। इसका अर्थ यह हुआ कि भारत दूसरी बार जाग रहा है। पुनरुत्थान में अतीत के किसी आदर्श को सहज स्वीकारते हुए उस पर सुधार प्रवृत्ति को अपनाने की बात की जा रही है। रामधारी सिंह 'दिनकर' इसे 'नव-मानवतावाद' के आंदोलन की संज्ञा देते हुए कहते हैं –"पुनरुत्थान से मेरा तात्पर्य उस वैचारिक आंदोलन से है जो भारत यूरोप के संपर्क के साथ हुआ था और जो कदाचित् आज भी चल रहा है। यह आंदोलन भारत में नई मानवता के जन्म का आंदोलन है एवम् उसके प्रवाह के साथ केवल यूरोपीय विचार ही भारत में नहीं आ रहे हैं बल्कि इस देश के बहुत से प्राचीन विचार भी नवीनता प्राप्त कर रहे हैं। पौराणिक कथाओं पर इस आंदोलन ने नई आभा बिखेरी है और

[4] शर्मा, डॉ. रामविलास, भारतीय नवजागरण और यूरोप, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, 1996,पृष्ठ संख्या -192

इसके आलोक में हमारे इतिहास की अनेक घटनाएँ एवं नायक नई ज्योति से जगमगाने लगे हैं।"[5]

इस कथन में पुरातनता के पुनरुत्थान की ओर संकेत किया गया है लेकिन पुरातन मूल्यों की पुनर्स्थापना आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में ही होनी चाहिए। भारत में उपनिवेश काल में कुछ इसी तरह का नया परिवर्तन आया। हिंदी क्षेत्र में यह उन्नीसवीं सदी के भारतेंदु-युग के रचनाकारों, पत्रकारों के रूप में हुए सांस्कृतिक उत्पादन को हिंदी नवजागरण के नाम से जाना जाता है। हिंदी में नवजागरण का प्रसार करने वाले साहित्यकार अधिक थे। राहुल सांकृत्यायन ने अपनी पुस्तक 'हिंदी काव्य-धारा' में सर्वप्रथम नवजागरण शब्द का प्रयोग करते हुए हिंदी साहित्य के आधुनिक युग को नवजागरण युग 1944 ई. में कहा था। "नवजागरण की बात करने वाले एक और आलोचक हुए- प्रकाशचंद गुप्त। उनकी पुस्तक 'साहित्य-धारा' में एक निबंध है- 'हिंदी-कविता में नवजागरण' इसमें प्रकाशचंद गुप्त मानते हैं कि अंग्रेजी राज के कारण भारत में राष्ट्रीय चेतना का उदय हुआ और राष्ट्रीय जागरण का भी।"[6] चूँकि उस समय भारत में अंग्रेजों का औपनेविशिक शासन स्थापित हो गया था इस कारण भारत में नवजागरण अंग्रेजी-राज के संपर्क की देन है या टकराहट की ? या दोनों की मिली-जुली देन है; यह नवजागरण का एक महत्वपूर्ण प्रश्न है, जिसकी विस्तारपूर्वक व्याख्या आगे की जाएगी।

1.2 भारतीय नवजागरण :

[5] सिंह, रामधारी 'दिनकर', 'पंत, प्रसाद और मैथलीशरण गुप्त' , पृष्ठ संख्या - 49

[6] पाण्डेय, मैनेजर, रामविलास शर्मा और हिंदी नवजागरण, समकालीन भारतीय साहित्य मई -जून 2013, पृष्ठ संख्या -28

भारतीय इतिहास का आधुनिक काल 19वीं शताब्दी से प्रारंभ होता है। इस समय भारतीय शिक्षा, कला, चिंतन, धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक आदि सभी क्षेत्रों में हुए आंदोलनों एवं विद्रोह में किसी न किसी रूप में नवजागरण के मूल्य विद्यमान थे। इस प्रकार उस समय भारत में हुए विशालकाय सांस्कृतिक परिवर्तन को भारतीय नवजागरण कहा जा सकता है। जब भी परिस्थितियों परिवर्तन आता है, उसका कोई-न-कोई खास कारण जिसे प्रेरक-तत्व भी कह सकते हैं वह जरूर होता है। इसलिए सदियों से मान्यता यह भी चली आ रही है कि भारतीय नवजागरण का मूल कारण- अंग्रेजों की पराधीनता से मुक्ति का परिणाम है; जो परंपरागत और आधुनिक विचारधाराओं के अन्तर्द्वन्द्व से उत्पन्न भारतीय जनता की राष्ट्रीय आत्म पहचान का संघर्ष था।

1.2.1 भारतीय नवजागरण की अवधारणा एवं पृष्ठभूमि :

किसी भी देश में सभी क्षेत्रों में, प्रान्तों में नवजागरण एक साथ घटित हो, यह जरूरी नहीं होता। प्रायः ऐसा संभव भी नहीं हो पाता। यूरोप में हुए रेनेसा की तरह भारत में भी नवजागरण की लहर तब चली, जब भारत पर अंग्रेजों का आधिपत्य हो गया था। भारतीय नवजागरण, यूरोपीय सभ्यता और अंग्रेजों के घात-प्रतिघात से ही उत्पन्न नहीं हुआ। केवल यूरोपीय विचार और संस्कृति ही भारत नहीं आए आ रहे थे बल्कि इस देश के बहुत-से प्राचीन विचार भी नवीनता प्राप्त कर रहे थे। इस कड़ी में हम देख सकते हैं कि 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में विवेकानंद को अमेरिका में और रवीन्द्रनाथ ठाकुर को ब्रिटेन तथा पूरे पश्चिमी जगत में जो लोकप्रियता व प्रसिद्धि मिलीं; उसका मूल कारण उपनिषदों की वही चिंतनधारा थी जो धार्मिक रूढ़ियों से जनमानस को मुक्त करने में सहायक थी। किसी भी देश की जागृति और विकास में इसके ऐतिहासिक और भौगोलिक परिप्रेक्ष्य की अहम भूमिका रहती है। भारत के साथ भी कुछ ऐसा ही रहा। यह भौगोलिक परिप्रेक्ष्य से विविधतापूर्ण है। फलस्वरूप विभिन्न

भाषाओं, संस्कृतियों, विचारों आदि के समन्वय से नवचेतना प्राचीन काल से ही आती-जाती रही हैं। इसी संदर्भ में रामधारी सिंह दिनकर ने 'संस्कृति के चार अध्याय' में लिखा है कि- "भारतीय संस्कृति में चार बड़ी क्रांतियाँ हुई हैं और हमारी संस्कृति का इतिहास उन्हीं चार क्रांतियों का इतिहास है। पहली क्रांति तब हुई जब आर्य भारत वर्ष में आए। ....दूसरी क्रांति तब हुई, जब महावीर और गौतम बुद्ध ने इस स्थापित धर्म या संस्कृति के विरुद्ध विद्रोह किया।..........तीसरी क्रांति उस समय हुई जब इस्लाम विजेताओं के धर्म के रूप में भारत पहुँचा और इस देश में हिंदुत्व के साथ उसका संपर्क हुआ और चौथी क्रांति हमारे अपने समय में हुई। जब भारत में यूरोप का आगमन हुआ तथा उसके संपर्क में आकर हिंदुत्व एवम् इस्लाम दोनों ने नवजीवन का अनुभव किया।"[7] हालाँकि भारतीय नवजागरण को देखने का सबका अपना-अपना नज़रिया है। कोई इसे यूरोप की एक महत्वपूर्ण देन मानता है तो कोई इसे स्वाधीन चेतना का फल, कोई आधुनिकता के दौर का परिणाम मानता है तो कोई शिक्षित समाज-ज्ञान। जबकि 'नामवर सिंह' भारतीय नवजागरण के अस्तित्व को ही अस्वीकार करते हैं। 19वीं शताब्दी के भारतीय नवजागरण को 'रेनेसा' कहने में उन्हें कठिनाई होने लगी। उनका मानना था कि - "इस युग के भारतीय विचारकों और साहित्यकारों के प्रेरणा-स्त्रोत यूरोप के पंद्रहवीं शताब्दी के साहित्यकार या चिन्तक न थे।"[8] तो फिर इसे 'रेनेसा' कैसे कहा जाएँ ? इस प्रकार वे भारतीय नवजागरण को यूरोप के 'रेनेसा-काल' की अपेक्षा यूरोप के 'एनलाइमेंट-ऐज' अथवा 'ज्ञानोदय-काल' के ज्यादा निकट पाते हैं। उनका मानना है कि भारत के नवजागरण कालीन साहित्यकारों तथा विचारकों पर 'कांट', 'जान स्टुअर्ट मिल' तथा 'हर्बर्ट स्पेंसर' का प्रभाव दिखता है। यूरोप के 'ज्ञानोदय-काल' के प्रति स्वयं बंकिमचंद्र की सहानुभूति भी रूसो और प्रूधों के साथ दिखाई देती है। "कमोबेश यही स्थिति बंगाल में राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, देरोजियो आदि

[7] सिंह, रामधारी 'दिनकर', संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, इलहाबाद, 2011, पृष्ठ संख्या -8

[8] सिंह, नामवर, हिंदी नवजागरण की समस्याएँ

की दिखती है और हिंदी में महावीरप्रसाद द्विवेदी तथा रामचंद्र शुक्ल की भी।"[9] अतः इस काल को 'रेनेसा' के समकक्ष कैसे समझा जाएँ ? भारत का नवजागरण काल तो यूरोप के ज्ञानोदय-काल के तुल्य बैठता है, रही बात रेनेसा की तो उसकी तुलना हम 15वीं शताब्दी से कर सकते हैं, जिसे डॉ. रामविलास शर्मा ने 'लोक-जागरण' कह कर न केवल संबोधित किया बल्कि इस द्वंद्वात्मक समस्या का समाधान भी प्रस्तुत किया। फिर भी भारतीय नवजागरण की चर्चा के क्रम में यूरोपीय रेनेसा का ज़िक्र इतना हुआ है कि स्मृति-पटल से उसे एकदम से मिटा देना मुश्किल है। संभवतः अब तक भी यह सार्वभौम स्वीकृति प्राप्त नहीं कर सका है।

यूरोप की भांति भारत में 'अंधकार-युग' कभी नहीं था। यहाँ विकास की प्रक्रिया व इसके अवशेष पहले से ही विद्यमान थे, बस उसकी गति नवीन वैचारिक धारा के रूप में तीव्रता से प्रवाहित होने लगी थी। शायद इसी कारण इसे भारत में नवजागरण की संज्ञा दी गई जबकि यूरोप ने दीर्घ काल के अंधकार-युग और सामंती मध्यकाल से छुटकारा पाया था, अतः इसे यूरोप में रेनेसा कहा गया। यूरोपीय रेनेसा की सबसे बड़ी उपलब्धि रही- औद्योगिक क्रांति; जिसके सहारे वह व्यापारिक नीति बनाते हुए अपने राष्ट्र का विकास और विस्तार कर रहा था। जिससे भारत भी अछूता न रहा। चूँकि इस बात का ज़िक्र पहले भी हो चुका है कि यूरोप की भांति यहाँ अंधकार युग जैसा कोई युग नहीं था; यहाँ ज्ञान की सतत प्रक्रिया सदियों से चली आ रही थी – सिद्ध, बौद्ध, नाथ, जैन से लेकर अमीर खुसरो, विद्यापति, कबीर, जायसी, तुलसी, नामदेव, नानक, रैदास, आण्डाल, अक्का महादेवी तथा मीराबाई आदि के योगदानों को देखें तो यह बात स्पष्ट हो जाती है। इस संदर्भ में रामविलास शर्मा का कथन है –"भारत में यह तथाकथित 'मध्यकाल' (लगभग तीसरी से सोलहवीं शताब्दी) का दौर ज्ञान-विज्ञान और विदेश व्यापार सहित उद्योग व्यापार की भारी उन्नति का युग था। यूरोप और रोमन ज्ञान-विज्ञान और

[9] वही

साहित्य कलाओं का पुनरुद्धार होता है।"[10] बौद्ध, जैन, नाथ, सिद्ध और उसके बाद विभिन्न भारतीय भाषाओं के माध्यम से सांस्कृतिक आंदोलन चला; जिसे भक्ति आंदोलन के नाम से जाना जाता है। धीरे-धीरे जन-भाषाओं के प्रयोग को लेकर रचनाकार सजग हो रहे थे, ताकि जनता तक अपने विचारों को संप्रेषित कर सकें। इस प्रकार भारतीय नवजागरण एक नयी स्फूर्ति के साथ जागृति का विस्तार कर रहा था। इसी विशेषता के संदर्भ में डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है- "भारतेंदु युग उत्तर भारत में जनजागरण का पहला या प्रारम्भिक दौर नहीं है; वह जनजागरण की पुरानी परम्परा का खास दौर है। जनजागरण की शुरुआत तब होती है जब बोल-चाल की भाषाओं में साहित्य रचा जाने लगता है।"[11] वस्तुतः भाषा; विकास की वह कसौटी है जिस पर भारतीय नवजागरण की व्यापकता और गहराई जाँची जा सकती है। तुलसी, कबीर, जायसी सभी भक्तिकालीन कवियों का साहित्य भी जनवाणी में ही है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि ये लोग समाज के हाशिए पर थे, इन्होंने जो भी सामाजिक एवं लोकहित कार्य किए वह विशेष वर्ग तक ही सीमित न रहा बल्कि इससे समूचा समाज जागृत हुआ। इस तरह जन-भाषा की ओर जागरूकता जनता में भक्तिकाल से प्रारम्भ होते हुए आगे भी बना रहा जिसका परिणाम विभिन्न समाज-सुधारकों के द्वारा चलाये गये आंदोलनों व लेखनी में प्रखर रूप में नज़र आता है। अंग्रेजों को जन-भाषा की शक्ति का अनुमान भी नहीं था, वरना साम्राज्य स्थापित करने की नीति से केवल उस समय भारत की संस्कृति में सदियों से चली आ रही संपन्न एवं समृद्ध भाषा संस्कृत और उसमें रचित ग्रंथों की ओर ही अपना ध्यान न सीमित रखते। इसी प्रसंग में प्रो. गजेन्द्र पाठक ने लिखा है "भक्ति आंदोलन की महान परम्परा से अनभिज्ञ अंग्रेज बुद्धिजीवी वर्ग भारत की लोकभाषाओं की शक्ति से बेख़बर था। भारतीय साहित्य के नाम पर उन्हें कालिदास

[10] शर्मा, डॉ. रामविलास, भारतीय नवजागरण और यूरोप, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली 1996, पृष्ठ संख्या -211

[11] शर्मा, डॉ. रामविलास, भारतेंदु हरिश्चंद्र और हिंदी नवजागरण की समस्याएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृष्ठ संख्या -13

के अतिरिक्त शायद ही कुछ पता हो। काश, ऐसा हो पाता कि कबीर, तुलसी, रहीम, जायसी और मीरा की कविता की जानकारी सर विलियम जोन्स को होती। शेक्सपीयर और वडर्सवर्थ पर इतराते फिरने वाले अंग्रेज भारतीय साहित्य की चवन्नी से भी परिचित हुए होते तो भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद की आत्म-मुग्धता का ऐसा रूप देखने में नहीं आया होता।"[12] साहित्य में जैसे-जैसे जन-भाषाओं का प्रभाव बढ़ता जा रहा था, वैसे-वैसे साहित्य में विशिष्टता भी बढ़ती जा रही थी। रचनाकार अब एक तरह से समाज का नेतृत्व कर रहे थे तथा प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष्य रूप से राजनीतिक और सामाजिक आंदोलन भी खड़े करने में सफल हो पा रहे थे। इस प्रकार अपनी आवाज़ को साम्राज्यवादी ताकतों की भाषा और शोषण के दबाव में दबते हुए देख जन-भाषाओं के स्वत्व की रक्षा का प्रश्न स्वाभिमान का प्रश्न बन कर उभरने लगा। भारतीय नवजागरण जहाँ लोकजागरण की विकासात्मक प्रक्रिया है, वहीं यह उपनिवेशवादी दौर की उपज भी है; इसे नकारा नहीं जा सकता। भारतीय नवजागरण में देश के आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में नवीन चिंतन का आरम्भ हुआ। यह नवीन चिंतन हमारी अपनी परिस्थितियों से जन्मा, यह पश्चिमी अथवा अंग्रेजों की देन न था; ऐसा मानने वालों का भी एक वर्ग इस देश में है। पर यह भी सत्य है कि अंग्रेजों की पराधीनता की छत्रछाया में भारत की राष्ट्रीयता विकसित हुई। भले ही अंग्रेज अपने स्वार्थ हेतु आधुनिक संसाधनों जैसे- प्रेस, रेल, शिक्षा के लिए विश्वविद्यालय आदि की स्थापना करते रहें परन्तु इससे भारतीय जनता को उनके द्वारा अपने ऊपर हो रहें अत्याचार, शोषण, लूट आदि को पहचानने की शक्ति और इसका विरोध करने के लिए एक तरह से नई ऊर्जा मिल रही थी। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि भारतीय नवजागरण अंग्रेजों की देन मात्र न होते हुए दो विभिन्न संस्कृतियों, विचारों की टकराहट से उत्पन्न रचनात्मक ऊर्जा का परिणाम है। वीरभारत तलवार के अनुसार "भारतीय नवजागरण की खासियत यूरोपीय

[12] पाठक, गजेन्द्र, हिंदी नवजागरण, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2005, पृष्ठ संख्या -92

संपर्क से हासिल आधुनिक ज्ञान-विज्ञान को आत्मसात करके भारतीय सभ्यता और संस्कृति के मुआफिक एक आधुनिक समाज बनाने की आत्मनिर्भर कोशिशों में थी।"[13]

भारत में नवजागरण का आरम्भ बंगाल से माना जाता है। इसका कारण भी कहीं-न-कहीं अंग्रेजों का आगमन ही रहा क्योंकि इनका प्रशासन भारत में सर्वप्रथम बंगाल प्रांत से ही शुरु हुआ। तद्दोपरांत अलग-अलग प्रान्तों में नवजागरण की शुरुआत अलग-अलग समय, अलग-अलग स्वरों एवम् अलग-अलग भाषाओं के रूप में हुई। भारतीय नवजागरण के विकास में प्रादेशिक भिन्नता को रेखांकित करते हुए डॉ. नामवर सिंह लिखते हैं – "स्वत्व संघर्ष में उन्नीसवीं शताब्दी के नवजागरण का सबसे निर्णायक कदम भाषा के क्षेत्र में उठा।"[14] साम्राज्यवादी षड्यंत्रों के विरुद्ध देशी भाषाएँ अपनी रक्षा और विकास के लिए विदेशी भाषा से लड़ रही थीं। कहने का तात्पर्य यह है कि इस काल में विभिन्न भाषाओं में हुए लेखन-कार्य राजनीतिक-सामाजिक आंदोलन देश एवं प्रांत में व्याप्त पिछड़ेपन तथा पराधीनता को दूर करने का प्रयास कर रहे थे। तत्कालीन समाज एवं देश में विभिन्न प्रकार की सामाजिक कुरीतियाँ, अंधविश्वास, बहु-विवाह, विधवा-विवाह निषेध, सती-प्रथा जैसे धार्मिक रूढ़ियाँ मौजूद थीं। इन सब के प्रति जनता को जागृत करने तथा निजात पाने का सशक्त माध्यम भारतीय भाषाएँ जो नवजागरण की सबसे मूल्यवान देन गद्य और पत्रकारिता रहीं। महाकाव्य के स्थान पर समकालीन विषय पर उपन्यास, नाटक, निबंध आदि लिखे जाने लगे। बंगाल में राजा राममोहन राय, बंकिमचन्द्र, केशवचन्द्र सेन, विवेकानंद और महाराष्ट्र में ज्योतिबा फुले, तिलक, गुजरात में दयानंद सरस्वती, हिंदी प्रदेश में भारतेंदु और तमिल में सुब्रह्मण्यम भारती के अतिरिक्त केरल में नारायण गुरु आदि ने अपने-अपने तरीके से सुधार आंदोलन चलाए। जिसके लिए राजा राममोहन

---

[13] तलवार, वीरभारत, रस्साकशी, सारांश प्रकाशन, दिल्ली, 2012, पृष्ठ संख्या -30

[14] सिंह, नामवर, हिंदी नवजागरण की समस्याएँ, पृष्ठ संख्या -6, www.hindisamay.com

राय ने उपनिषदों का सहारा लेते हुए ब्रह्म समाज की स्थापना की तथा आधुनिकीकरण की नींव डाली। सती प्रथा को बंद करने में उनकी मुख्य भूमिका थीं, वहीं विवेकानंद ने अद्वैत वेदांत, दयानंद सरस्वती ने वेद आदि के विचारों पर चलते हुए धार्मिक भेद-भाव, ऊँच-नीच, सामाजिक रूढ़ियों, बाह्यडम्बर, अंधविश्वास का घोर विरोध किया। जिसमें तत्कालीन समाज की ज्वलंत समस्याओं, अंग्रेजों के द्वारा किए गए शासन और शोषण दोनों का महत्वपूर्ण योगदान रहा। बंगाल को उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में ईश्वरचंद्र विद्यासागर मिल गए और उत्तरार्ध में बंकिमचंद तथा रवींद्रनाथ। वहीं महाराष्ट्र में मराठी राजा के ज़माने से ही राजकाज की भाषा थी, दूसरे 1840 ई. तक मराठी माध्यम से शिक्षा देने वाले बहुत से स्कूल खुल गए थे। आगे चलकर मराठी को महात्मा ज्योतिबा फुले, रानाडे और लोकमान्य तिलक जैसे गद्यकार मिले। वहीं यूरोपीय रेनेसा में इटली में दांते, इंग्लैंड में शेक्सपीयर, मिल्टन आदि का योगदान रहा। यहाँ सवाल उठता है कि क्या भारतीय नवजागरण यूरोप के रेनेसा का नकल या उससे प्रेरित रूप है ? क्या भारतीय नवजागरण की अपनी कोई अस्मिता नहीं है ? क्योंकि जिस तरह यूरोप के रेनेसा के अग्रदूत साहित्यकार व समाज-सुधारक रहे, ठीक यही स्थिति भारतीय नवजागरण की भी रही। इस क्रम में यूरोपीय रेनेसा और भारतीय नवजागरण के मध्य अंतर को समझ लेना भी आवश्यक हो जाता है, जिसकी विस्तारपूर्वक व्याख्या आगे की जाएगी।

1.2.2 भारतीय नवजागरण एवं यूरोपीय रेनेसा में विभिन्नता :

यूरोपीय रेनेसा और भारतीय नवजागरण दोनों ही अपने-अपने देश के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक विकास, उन्नति और परिवर्तन को प्रतिनिधित्व करते है। भारत

और यूरोप का इतिहास, परिवेश और भी कई सन्दर्भों से अलग रहा है, परन्तु दोनों की मूल चेतना अंशतः एक समान रही पर पूर्णतः नहीं।

- यूरोपीय रेनेसा जहाँ प्राचीन रोम तथा यूनान की सांस्कृतिक उपलब्धियों की खोज करके सामाजिक और धार्मिक जीवन में चर्च एवं पोप के वर्चस्व को ख़त्म करने और मानवता की तलाश से होता है, वहीं भारतीय नवजागरण में यूरोपीय रेनेसा की तरह कोई भी विद्रोही चेतना धर्म, कला, दर्शन आदि के क्षेत्र में नहीं दिखाई देती है। यहाँ विद्रोही चेतना के साथ-साथ क्रांतिकारी रूप राजनीति साहित्य और समाज में दिखाई देता है। दोनों ही स्थानों पर इस प्रक्रिया के फलस्वरूप आधुनिकता का उदय हुआ और सामंती काल का अस्त हुआ। बावजूद इसके यूरोप में जहाँ मानव को केंद्र में रखकर ज्ञान, स्वतंत्र चिंतन, विवेक, तर्कशक्ति, विकास को महत्व दिया गया, वहीं भारत में राष्ट्रीय हितों को सर्वोपरि रखकर राष्ट्र को धुरी मानकर नवजागरण की परिधि तैयार की गई। डॉ.मीरा बल के अनुसार "वह राष्ट्रीय पहले है मानवतावादी बाद में। यहाँ व्यक्ति में 'भारतीयता' तथा 'राष्ट्रीयता' की गौरव, गरिमा और राष्ट्रीय महत्वकांक्षाओं को ही जागृत कर उनका प्रतिरोपण करने का प्रयास किया।"[15] यूरोप के रेनेसा का कालखंड 1300 से 1600 तक का है। भारत में इसके करीब पाँच सौ वर्षों अर्थात् 1800 से 1947 तक या कहें आज तक यह प्रक्रिया चल रही है।
- दोनों ओर प्रेस, मुद्रण, पत्रकारिता जैसे सशक्त जनमाध्यमों द्वारा जनभाषाओं में पुस्तकों, पत्र-पत्रिका एवं ज्ञानात्मक अनुवादित एवं मौलिक सामग्री के प्रकाशन से एक अभूतपूर्ण जनजागृति का सम्प्रेषण हुआ। फिर भी भारतीय नवजागरण; यूरोपीय रेनेसा से इस बात में भी भिन्न है कि यूरोप उस समय किसी देश व सत्ता के अधीन नहीं था। यह पश्चिम यूरोप के स्वतंत्र राज्यों में स्वाभाविक परिस्थितियों में विकसित हुआ था जबकि भारत अंग्रेज़ों का गुलाम था। यह

[15] बल, डॉ. मीरा, राष्ट्रीय नवजागरण और हिंदी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994, पृष्ठ संख्या -36

साम्राज्यवाद से जूझते, संघर्ष करते हुए उसके फलस्वरूप अस्वाभाविक परिस्थितियों में विकसित हुआ।

- भारत का नवजागरण भारत और भारतीयता के दायरे तक ही सीमित रहा है जबकि यूरोपीय रेनेसा समूचे विश्व में छा गया। यह यूरोप की भांति सार्वभौम नहीं है। इस विभिन्नता को स्पष्ट करते हुए डॉ. प्रदीप सक्सेना कहते हैं "एक ओर यूरोपीय पुनर्जागरण में विश्व बाज़ार में विभिन्न रास्तों को जगह बनाते देखते हैं। डच, पुर्तगाली, फ्रांसीसी और अंग्रेज ! दूसरी ओर भारत विश्व बाज़ार में अपनी जगह इस तरह नहीं बनता है। यहाँ पुनर्जागरण अनुभव किया जाता है – भाषा और साहित्य में।"[16]
- विज्ञान और धर्म जहाँ यूरोप में आमने-सामने खड़े थे वहीं, भारत में परिस्थितियां बिल्कुल विपरीत थीं। यहाँ धर्म और आध्यात्मिक भावना को ही संगठित, नवजागृत, उदात्त रूप देने का प्रयास किया गया। यहाँ धर्म का विरोध नही; धर्म की पुनर्व्याख्या है। जबकि यूरोपीय रेनेसा संगठित चर्च, ईसाई धर्म से मुक्ति पाने की तीव्र उत्कंठा लिए हुए था। भारतीय नवजागरण के अग्रदूत यूरोप में हुए रेनेसा के अग्रदूतों की भांति अधिकांशतः शिक्षित, धनी, संभ्रांत परिवार से जुड़े हुए नहीं थे बल्कि भारत में यह प्रक्रिया आम जनता द्वारा प्रतिपादित होती है।

बावजूद इस समानता और विभिन्नता के यह बात तो स्पष्ट है कि यूरोपीय रेनेसा नव आदर्श, बोध-युक्त सार्वभौम है तो भारतीय नवजागरण मानवी आदर्श के साथ राष्ट्रीयता से जूझता, कर्तव्यनिष्ठ जो भारतीय परंपरा, संस्कृति और आधुनिक पाश्चात्य बोध का समन्वय करता हुआ भी भारतीय अस्मिता को समेटे हुए है।

[16] सक्सेना, डॉ. प्रदीप, 1857 और भारतीय नवजागरण, आधार प्रकाशन, पंचकूला, 1996, पृष्ठ संख्या -107

1.3 हिंदी नवजागरण की अवधारणा और पृष्ठभूमि :

भारतीय नवजागरण साम्राज्यवाद तथा सामंतवाद से छुटकारा पाने के साथ राष्ट्रवादी बन गया। यह परिवर्तन बंगाल, महाराष्ट्र से आरंभ होकर अंततः हिंदी प्रदेश में हुआ। जहाँ सुधारवाद के रूप में बंगाल, महाराष्ट्र में कई परिवर्तन हुए, वहीं राष्ट्रवाद के रूप में हिंदी प्रदेश में परिवर्तन स्वरूप जागृति आई। इस संदर्भ में डॉ. रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण' में इसकी सैद्धांतिकी दी है। हिंदी नवजागरण को उन्होंने 'हिंदी जाति' का जागरण कहा है। यहाँ जाति की अवधारणा में जाति शब्द का प्रयोग नस्ल या बिरादरी के लिए न होकर कौम के अर्थ में हुआ है। 'निराला की साहित्य साधना' द्वितीय खंड में इसे स्पष्ट करते हुए रामविलास जी ने लिखा है- "भारत में अनेक भाषाएँ बोली जाती हैं। इन भाषाओं के अपने-अपने प्रदेश हैं। इन प्रदेशों में रहने वाले लोगों को 'जाति' की संज्ञा दी जाती है। वर्ण-व्यवस्था वाली जाति-पाँत से इस 'जाति' का अर्थ बिल्कुल भिन्न है। किसी भाषा को बोलने वाली, ईकाई का नाम 'जाति' है।"[17] अगर हिंदी जाति की बात करें तो इसकी शुरुआत लोक-भाषाओं के उदय के साथ भक्तिकाल से ही गठित होने लगी थी। यह क्षेत्र आज भी राजनीतिक रूप से विभक्त है, इसका क्षेत्र उत्तर प्रदेश, उत्तरांचल, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, बिहार, झारखण्ड, दिल्ली, राजस्थान, हरियाणा, हिमाचल तक विस्तृत है। इस प्रकार से भारत बहुजातीय राष्ट्र बनकर उभरा, जिसमें बांग्ला, मराठी, तमिल आदि जाति की तरह हिंदी को भी एक जाति माना जाने लगा। डॉ. शर्मा ने रेखांकित किया है कि नवजागरण की पृष्ठभूमि भक्ति आंदोलन के रूप में लोकजागरण था। लोकभाषा के उदय के साथ सामंतवाद और ब्राह्मणवाद का विरोध कवियों ने किया। इसी विकास को आगे वह 1857ई. की क्रांति के रूप में हिंदी नवजागरण को देखते हैं। जिसमें साम्राज्यवाद और पूंजीवाद की विरोधी चेतना के साथ नए ज्ञान का प्रसार हुआ।

[17] शर्मा, रामविलास, निराला की साहित्य साधना (खंड-2), पृष्ठ संख्या -69

हिंदी और हिंदी के बाहर भी ऐसे अनेक व्यक्ति हैं जो यह मानते हैं कि भारत में आधुनिकता और प्रगति का आगमन अंग्रेजी राज के साथ हुआ। ठीक इसके विपरीत रामविलास शर्मा भारतीय समाज और संस्कृति के विकास में अंग्रेजी राज की कोई सार्थक भूमिका नहीं मानते हैं। चूकिं 1857 ई. स्वाधीनता-संग्राम का केंद्र मुख्यतः हिंदी प्रदेश ही रहा था। वह आमतौर पर भारतीय जनता और खासतौर पर हिंदी जाति के साम्राज्यवाद-विरोध की उदात्त अभिव्यक्ति था। संभवतः उन्होंने 1857 की क्रांति को हिंदी नवजागरण की पहली मंजिल माना है। इस प्रकार हिंदी नवजागरण की अवधारणा, उसकी ऐतिहासिक विकास प्रक्रिया, उसके स्वरूप, उसकी विशेषताओं और भारत के अन्य क्षेत्रों के नवजागरणों से उसकी स्वतंत्र पहचान का सुव्यवस्थित तथा विस्तृत विवेचन रामविलास शर्मा अपनी पुस्तक 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण' (1977) पुस्तक में, हिंदी नवजागरण के स्वरूप के बारे में लिखा है। इसमें पहला वाक्य यह है कि "हिंदी प्रदेश में नवजागरण 1857 ई. के स्वाधीनता संग्राम से शुरु होता है।"[18] इस कथन से स्पष्ट होता है कि हिंदी नवजागरण का आरंभ 1857 के महाविद्रोह से होता है। इससे यह मान्यता भी साफ़ है कि हिंदी नवजागरण अंग्रेजी राज के कारण नहीं बल्कि उसके विरुद्ध विकसित हुआ है। डॉ. शर्मा की अवधारणा में नवजागरण के स्थान पर हिंदी नवजागरण की अधिकता है, जिस कारण अन्य भारतीय जागरण का विवेचन पीछे छूट जाता है, जबकि इनका आपसी संबंध है। शायद यही वज़ह रही होगी कि अक्सर अध्येताओं द्वारा हिंदी नवजागरण पर जाति विशेष, धार्मिकता का आरोप लगाकर तथाकथित 'हिन्दू नवजागरण' के नाम से जाना जाता आ रहा है,पर वास्तविकता कुछ और ही है। हिंदी नवजागरण 'हिन्दू नवजागरण' नहीं है; हाँ इसमें हिंदी भाषा, हिंदी-साहित्य की बात निहित है जो कि एक पहलू मात्र है इससे इसे संपूर्णता में नहीं समझा जा सकता क्योंकि हिंदी नवजागरण का मुख्य स्वर राष्ट्रीयता है जिसमें

[18] शर्मा, डॉ. रामविलास, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या -9 (भूमिका)

भारतीय समभाव की भावना की झलक मिलती है। इस कथन की पुष्टि भारतेंदु जो कि हिंदी नवजागरण के अग्रदूत माने जाते हैं, उनके बलिया वाले भाषण से कर सकते है। जहाँ उन्होंने अपनी चिंता जाहिर की कि 'भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है ?' न कि हिंदी प्रदेश जिसे उन्होंने हिंदी जाति कहा उसकी उन्नति कैसे हो सकती है ? उन्होंने कहा "जो हिन्दुस्तान में रहे, चाहे किसी रंग किसी जाति का क्यों न हो, वह हिन्दू। हिन्दू की सहायता करो। बंगाली, मराठा, पंजाबी, मदरासी, वैदिक, जैन, ब्राह्मण, मुसलमान सब एक का हाथ एक पकड़ो।"[19] यहाँ हिन्दू की सहायता करो में सभी को एक दूसरे की सहायता करने का भाव निहित है बिना किसी भेद भाव के हिंदुस्तान राष्ट्र के लिए .. ...पर इसका अर्थ लोग विशेष जाति से जोड़ लेते हैं परिणामतः हिन्दू-मुस्लिम विवाद उत्पन्न होने लगता है। इस प्रकार परस्पर विरोधी तथ्यों के कारण कोई वास्तविक तस्वीर उभर नहीं पातीं और यह आज भी विवाद का विषय बना हुआ है। बहरहाल जिस तरह हिंदी प्रदेश भारत देश का एक अभिन्न अंग है उसे अलग नहीं किया जा सकता ठीक उसी तरह हिंदी नवजागरण भी भारतीय नवजागरण का एक विशिष्ट अंग है। हर प्रदेश दूसरे प्रदेश से भाषा, संस्कृति यहाँ तक कि नवजागरण की दृष्टि से भी भिन्न रहा है। इस कड़ी में हिंदी नवजागरण बंगला और मराठी नवजागरण से भिन्न रहा है। इन दोनों प्रान्तों के नवजागरण में साहित्यकारों के साथ-साथ, चिंतकों और समाज-सुधारकों का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा, वहीं हिंदी नवजागरण में साहित्यकारों की बहुतायत रही। ये सभी साहित्यकार साहित्य की शक्ति से भली-भांति परिचित थे इसलिए नवजागरण के लिए सबसे आवश्यक तत्व 'संवादधर्मिता को पहचाना ही नहीं बल्कि उसे अमल भी किए। यह कार्य बिना प्रेस और समाचार पत्रों के संभव भी नहीं था। रामविलास जी ने नवजागरण का सारा श्रेय जातीय-चेतना को दिया है जबकि इतिहास प्रमाणित है कि नवजागरण को प्रसारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका

[19] हरिश्चन्द्र, भारतेंदु, भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है ?, आलोचना (पत्रिका) अंक- जनवरी-मार्च 2001, पृष्ठ संख्या -15

नई तकनीक की रही- समाचार-पत्र, छापेखाने यातायात व्यवस्था आदि। यह तकनीक भक्ति-आंदोलन में नहीं थी वरना वह लोक-जागरण आधुनिकता को जोड़ने वाला साबित होता। यहाँ कहना आवश्यक न होगा कि किस तरह नवजागरणरुपी आधुनिकता का समावेश हिंदी प्रदेश में होने लगा। समाज के शोषण और दयनीय अवस्था का कारण केवल औपनिवेशिक शासन ही नहीं था। भारतीय रुढ़िग्रस्त मानसिकता, कुरीतियाँ भी कारणीभूत थीं। धार्मिक व सामाजिक कर्मकांड, बाल-विवाह, विधवा-विवाह निषेध, सती-प्रथा आदि समस्याएँ समूचे देश में व्याप्त थीं जो देश के सर्वांगीण विकास व उन्नति में अवरोध उत्पन्न कर रही थीं। इसलिए साहित्यकार अपनी रचनाओं में जनक्रांति तथा शोषण का विरोध के साथ-साथ समाज में व्याप्त विकृतियों से मुक्ति का स्वर भरने लगे। इस तरह 19वीं शताब्दी का हिंदी नवजागरण कई तरह के दबावों, उसके ऐतिहासिक स्थिति में हो रहे बदलावों तथा औपनिवेशिक दौर की क्रिया-प्रतिक्रिया के फलस्वरूप उपजता है। जब बात हिंदी नवजागरण की हो तब हिंदी साहित्य से इतर जा कर कुछ विशेष कहा भी नहीं जा सकता। हां, हिंदी नवजागरण में भी हिंदी जातीय संबंधित सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक परिवर्तन हुए पर मूल आधार साहित्य और साहित्यकार का रहा। आगे हिंदी नवजागरण की व्याख्या हिंदी साहित्य के परिदृश्य में की जाएगी ताकि हिंदी नवजागरण की प्रवृत्तियों को ठीक से समझा जा सकें।

1.3.1 हिंदी नवजागरण : हिंदी साहित्य के संदर्भ में

नवजागरण की अभिव्यक्ति तत्कालीन साहित्य में दृष्टिगोचर होना, यह स्वाभाविक सी बात थीं क्योंकि संवेदनशील व्यक्ति होने के नाते अपने आस-पास में हो रहे परिवर्तनों को लेखक

व कवि ही शब्दबद्ध करते जाते हैं। बंगाल तथा महाराष्ट्र नवजागरण में लेखन-कार्य बड़े जोर-शोर से सफलता पा रहा था। वहीं हिंदी प्रदेश जो कि इन दोनों प्रान्तों में खासकर बंगाल क्षेत्र के अधिक निकट आता है, इस पर भी साहित्य-लेखन कार्य का प्रभाव धीरे-धीरे पड़ने लगा। यहाँ गौर करने की बात है- 'धीरे-धीरे'। जहाँ बंगाल करीबन सौ साल पहले ही जागृत होकर निरंतर प्रगति की ओर उन्मुख रहा, वहीं हिंदी प्रांत बंगाल के इतने निकट होने के बावजूद भी पिछड़ा और सुषुप्त अवस्था में पड़ा रहा। कारण था- हिंदी प्रदेश में शेष प्रांतों की तरह मातृभाषा के प्रति स्वाभिमान के बोध का अभाव तथा राजनीतिक सक्रियता की कमी। चूंकि हिंदी नवजागरण के अग्रदूत 'भारतेंदु' जो बंगाल नवजागरण से अत्यधिक प्रभावित थे, उनका व्यक्तिगत संपर्क बंगाल नवजागरण के ईश्वरचंद्र विद्यासागर, केशवचन्द्र सेन, बंकिमचंद्र आदि से था। हिंदी-क्षेत्र में पत्र-पत्रिका निकालने की प्रेरणा भी बंगाल से ही मिली थी। वस्तुतः हिंदी नवजागरण की शुरुआत भी एक तरह से पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से अन्य नवजागरणों की भांति ही हुई। इतना ही नहीं साहित्यिक विधाएं जैसे- उपन्यास, नाटक, निबंध, आदि भी प्राप्त हुए। साहित्य के क्षेत्र में गद्य का आरंभ और विकास इस युग की सबसे बड़ी देन है। न केवल गद्य में बल्कि पद्य में भी नवीन विषयों के समावेश के साथ-साथ शिल्प में भी नवीनता का आरंभ हुआ। जहाँ काव्य की भाषा में प्रचलित ब्रज भाषा का प्रयोग की बहुलता थी, अब उसे भारतेंदु ने सरल,सहज और स्वाभाविक बना दिया था। फलतः खड़ी बोली हिंदी का प्रयोग अब तीव्रता के साथ होने लगा। इस प्रसंग में भारतेंदु का कथन है –"हिंदी अब नयी चाल में ढली, सन् 1873"[20]। इस प्रकार हिंदी नवजागरण के दरम्यान हिंदी भाषा की प्रतिष्ठा हुई विशेष रूप से गद्य साहित्य जो उन्नीसवीं सदी के पूर्व बहुत हद तक अविकसित था, वह सुधार आंदोलनों के सान्निध्य में (बंगाल एवं महाराष्ट्र नवजागरण) विकसित हुआ। हिंदी साहित्य में नवजागरण

[20] (पुनरुधृत) शर्मा, रामविलास, भारतेंदु हरिश्चंद्र और हिंदी नवजागरण की समस्याएँ, राजकमल प्रकाशन, 2014, पृष्ठ संख्या – 19

की झलक स्पष्टतः दिखायी देने लगती है। गद्य में विभिन्न विधाओं के साथ-साथ रचना-विषय में भी विविधता का समावेश होने लगा था जैसे- नाटक, उपन्यास, निबंध आदि में अकाल और टैक्सों का वर्णन, बेरोजगारी, अशिक्षा, बाल-विवाह, अनमेल-विवाह, भुखमरी, विधवा-विवाह आदि सामाजिक विषयों के साथ-साथ राजनीति विषय। उनकी रचना प्रवृत्तियाँ एक ओर भक्तिकाल और दूसरी ओर रीतिकाल से अनुबध्द है, तो दूसरी ओर उनमें समकालीन परिवेश के प्रति जागरूकता का भी आभाव नहीं है। इन सब में केवल मात्र भारतेंदु का ही योगदान न रहा। इनके अतिरिक्त बालकृष्णभट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी, प्रेमचंद, निराला, सुभद्राकुमारी चौहान आदि सभी रचनाकारों ने हिंदी जाति को ही नहीं वरन् पूरे राष्ट्र को जागृत करने के लिए अपनी-अपनी कलम चलायी। बंगाली, मराठी, अंग्रेजी साहित्य से भी भली-भांति परिचित होते हुए भारतेंदु, महावीर प्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, प्रेमचंद जैसे विद्वानों ने उन भाषाओं से हिंदी में अनेक अनुवाद किए। जिससे एक वृहत् संख्या में लोग जागरूक हो सके। समाज में व्याप्त जितनी भी कुरीतियाँ, धार्मिक व सामाजिक रूढ़ियाँ थीं, वह प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों ही रूपों से स्त्रियों और बच्चों पर ही विशेषकर प्रहार करती थीं। यह चेतना हिंदी क्षेत्र में भी महसूस की जाने लगी थी कि समाज व देश के सर्वांगीण विकास में स्त्री-शोषण एवं शिक्षा एक बहुत बड़ी बाधा है और इन सबसे मुक्त कराये बिना सम्पूर्ण विकास संभव नहीं है। भारतेंदु ने इसके समाधान के लिए पत्र-पत्रिकाओं की जरूरत समझी। उन्होंने स्त्रियों के लिए अलग से पत्र-पत्रिका निकलने की योजना बनायी और बाल-बोधनी जैसी स्त्री-विषयक पत्रिका निकालने का कार्य किया। सामंती समाज में स्त्रियों को अधिकारहीन करके उन्हें शिक्षा और संस्कृति से वंचित किया गया था। इस व्यवस्था में स्त्रियों की स्थिति के संदर्भ में रामविलास शर्मा कहते हैं "सामंती समाज में व्यभिचार और सदाचार के दो विभाग कर दिए जाते हैं। व्याभिचार के लिए वेश्याएँ और रखैल होती हैं, सदाचार के लिए एक और अनेक

विवाहित गृहलक्ष्मियाँ। दोनों ही स्थिति में नारी पराधीन होती है, वेश्या कम, गृहलक्ष्मी अधिक। ऐसे समाज का व्यक्ति जब गण-समाज में स्त्रियों को स्वाधीन देखता है तो उसे सहज ही सदाचार से अधिक व्याभिचार दिखाई देता है।"[21] स्त्रियों के पिछड़ेपन और निरक्षरता से आधा समाज ही पिछड़ा हुआ और निरक्षर रहता है। इसीलिए पूरे समाज के विकास के लिए भारतीय स्त्रियों की शिक्षा और समानता का दावा करते थे, किन्तु एक सीमा के तहत। भारतेन्दु बलिया वाले भाषण 'भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है? में कहते हैं कि "लड़कियों को भी पढ़ाइए, किन्तु उस चाल से नहीं जैसे आजकल पढ़ाई जाती है, जिससे उपकार के बुराई होती हो ऐसी चाल से उनको शिक्षा दीजिए कि वह आपका और कुलधर्म सीखे, पति की भक्ति करें और लड़कों को सहज में शिक्षा दें।"[22]

इस व्याख्यान में भारतेन्दु की स्त्री विषयक विचारधारा की सीमा को स्पष्ट रूप से देख सकते हैं क्योंकि शिक्षा का अर्थ केवल पति सेवा, धर्म रक्षा और अपने लड़कों को पढ़ाने तक सीमित नहीं रहता बल्कि अपनी अस्मिता और अपने अधिकार को प्राप्त करना भी है। लेकिन भारतेन्दु युगीन समाज में केवल स्त्री को शिक्षा देने की बात करना ही अपने-आप में बड़ा क्रांतिकारी कदम था। इसे झुठलाया भी नहीं जा सकता। इस प्रकार सदियों तक विदेशी शासन की दासता झेलने के बाद शिक्षा प्राप्ति से स्त्रियाँ ही नहीं बल्कि देश भी जागृत होना शुरू किया। धीरे-धीरे साहित्य, पत्र-पत्रिकाओं में स्त्रियों की भी भागीदारी बढ़-चढ़कर होने लगी। इस काल की पत्रिकाओं में स्त्रियों द्वारा महत्वपूर्ण लेख लिखे गए। स्त्रियाँ केवल कहानियाँ, कविताएँ, मात्र न लिखती थीं, समाज की प्रत्येक गतिविधि में भी सक्रिय भागीदारी निभाती थीं - बंग महिला, कुसुम कुमारी, रामेश्वरी देवी नेहरु, सुभद्राकुमारी चौहान, महादेवी वर्मा आदि अनगिनत महिलाएं

[21] शर्मा, रामविलास, महावीर प्रसाद द्विवेदी, और हिंदी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, 2015, पृष्ठ संख्या -171
[22] सिंह, नामवर(सं.), आलोचना (पत्रिका), अंक- जनवरी-मार्च, 2001

हैं, जिनके लेखों में क्रांतिकारी, सुलझा, परिवर्तनकारी दृष्टिकोण समाज को चुनौती देता दिखाई देता है।

1.3.2 हिंदी नवजागरण के संदर्भ में महादेवी वर्मा की दृष्टि

हिंदी नवजागरण का साहित्य के क्षेत्र में कितना और किस तरह प्रभाव पड़ा इससे हम भली-भांति अवगत हो गए हैं। भारतेंदु युग से लेकर छायावाद-प्रगतिवाद; नवजागरण की कड़ियाँ हैं लेकिन इन सभी युगों की अलग-अलग अंतर्विरोधी स्थितियाँ हैं। मूल रूप से साम्राज्यवाद और सामंतवाद विरोधी चेतना जागृत करने में नवजागरण की भूमिका को स्वीकार किया जाता है। लेकिन महादेवी वर्मा के दृष्टिकोण से देखने पर नवजागरण के मुद्दे हाशिये के लोगों को साथ लेकर चल सके या न चल सके, यह सवाल उठ खड़ा होता है।

नवजागरण हो या हिंदी नवजागरण दोनों में धर्म, संस्कृति, समाज आदि को सुधारने की बात उठी। इन सबके लिए जो माध्यम चुना गया वह शिक्षा, पत्रकारिता, कुरीतियों का उन्मूलन आदि था। इन समस्त प्रयासों में स्त्री या अन्य हाशिये के लोगों में अस्मिता के साथ जीने की इच्छा की चेतना को जगाने का कार्य पुरुषों द्वारा ही संपन्न होता है। उसने स्त्रियों के लिए प्रचलित बहुत-सी रूढ़ियों और कुरीतियों को चुनौती दीं। यह हिंदी नवजागरण का एक सशक्त पक्ष है, लेकिन इसकी सीमा भी है। वह यह कि जिस दृष्टि से स्त्री-प्रश्नों पर विचार किया गया, वह पुरुष दृष्टि थीं, जिसमें पुरुष अपने लिए आधुनिक समाज में कैसी आधुनिक स्त्री चाहता है? इस संदर्भ में महादेवी वर्मा 'समसामयिक समस्या' निबंध में लिखती हैं – "पिछले जागरण युग ने अपने पूर्ववर्ती युग से जो जीव पाया था, उससे तो मानवी के स्थान में, सौंदर्य

का ध्वस्त आविष्कार विभाग कहना उचित होगा”[23] इस प्रकार स्त्री की साहित्यिक स्थिति सामाजिक स्थिति से भिन्न न थी। तत्कालीन समाज में स्त्रियों में व्याप्त पर्दा प्रथा, बाल विवाह, अशिक्षा, विधवा विवाह निषेध, सती प्रथा का चलन, बेमेल विवाह आदि कुरीतियों का नवजागरण के प्रसंग में ज़िक्र करते हुए यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि यह सब स्वतः स्फूर्त नहीं हुआ। इसका मजबूत आधार समाज में व्याप्त था। इस सन्दर्भ में महादेवी वर्मा ‘शृंखला की कड़ियाँ’ में ‘अपनी बात’ में लिखती हैं कि “समस्या का समाधान समस्या के ज्ञान पर निर्भर है और यह ज्ञान ज्ञाता की अपेक्षा रखता है। अतः अधिकार के इच्छुक व्यक्ति को अधिकारी भी होना चाहिए।”[24]

इस तरह हम देख सकते हैं कि महादेवी वर्मा हिंदी नवजागरण के अंतर्गत व्याप्त तमाम उन बहसों को मुख्यधारा की परिधि से बाहर लाकर हाशिए पर केंद्रित करती हैं। हिंदी नवजागरण के संदर्भ में भारतेंदु से लेकर रामविलास शर्मा तक सभी विद्वानों में राष्ट्र, राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय भाषा के प्रश्न को केंद्रीय रूप दिया। महादेवी ने भी इस पर विचार किया पर राष्ट्र की सेवा में रहने वाले प्रत्येक नागरिक की स्थिति उनकी नजर के केंद्र में है। कैसा राष्ट्र और कैसी राष्ट्रीयता जिस राष्ट्रीयता का भाव हिंदी नवजागरण का केंद्रीय स्वर बनकर उभरा उस पर महादेवी प्रश्नचिन्ह लगाती हुई नजर आती हैं। जहाँ राष्ट्र के एक नागरिक का दूसरे नागरिक से परिचय ही ना हो, एक राष्ट्र, परिवार और समाज में रहते हुए स्त्री पुरुष की स्थिति में क्षितिज मात्र संबंध रहता है जो दिखने में तो एक सा लगता है पर वास्तविक रूप में जमीन आसमान के अंतर को समेटे रहता है। ऐसे में स्त्री की राष्ट्र की समझ और पुरुष की राष्ट्र के समक्ष एक जैसी कदापि नहीं हो पाएगी और ऐसे में राष्ट्रीयता पद-बंध की सार्थकता कैसे पूर्ण हो पाएगी?

---

[23] वर्मा, महादेवी, साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1970, पृष्ठ संख्या – 172
[24] वर्मा, महादेवी, शृंखला की कड़ियाँ, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2015, पृष्ठ संख्या – 09

वस्तुतः महादेवी स्त्री को नागरिक-अधिकार की बात से परिचित कराती हुई **'श्रृंखला की कड़ियाँ'** निबंध लिखती हैं। यदि हिंदी नवजागरण और उसके बाद भी स्त्री संबंधी उन तमाम मुद्दों पर गहन विवेचन होता और सामाजिक अवस्था में गंभीर परिवर्तन होता तो शायद महादेवी को। **'श्रृंखला की कड़ियाँ'** लिखने की जरूरत ही न होती।

इस प्रकार हिंदी नवजागरण के परिपेक्ष्य में महादेवी समग्रता में विचार व्यक्त करते हुए कहती हैं कि "साधारणत: जीवन की व्यष्टिगत चेतना के पश्चात ही समष्टिगत राष्ट्रीय चेतना का उदय होना चाहिए। परंतु साधन और समय के अभाव में हम इस चेतना का आह्वान केवल असुविधाओं के भौतिक धरातल पर ही कर सके; इसी से शताब्दियों से निर्जीवप्राय जनसमूह सक्रिय चेतना लेकर पूर्ण रूप से अब तक न जाग सका।"[25]

हिंदी नवजागरण के दौरान उत्पन्न राष्ट्रीय चेतना का एक विशेष राजनीतिक लक्ष्य था। वह सामंतवाद और साम्राज्यवाद से मुक्ति चाहता था। जिस पर नवजागरण कालीन साहित्यकारों का विशेष ध्यान रहा, पर महादेवी ने अपनी लेखनी में व्यक्ति के अस्तित्व को विशेषकर 'स्त्री के नागरिकत्व' को प्राथमिकता दी, तदुपरांत राष्ट्र की पहचान को। जिससे कि जिस 'राष्ट्रीयता' की बात नवजागरण के तहत बार-बार की जाती है उसकी सार्थकता पूर्ण हो सके वस्तुतः इसका विस्तारपूर्वक विवेचन आगे के अध्यायों में किया जाएगा।

कुल मिलाकर कह सकते हैं कि हिंदी नवजागरण अनेक अंतर्विरोधों और विसंगतियों से भरा हुआ है। जिसमें राष्ट्रवाद, सामाजिक-सुधार, स्त्री दृष्टि, देशोन्नति आदि से संबंधित विचार शामिल हैं। इन विचारधाराओं में तब से लेकर आज तक संघर्ष चल रहा है। सभी प्रकार के शोषण तथा विषमता से मनुष्य और राष्ट्र को मुक्त करना ही साहित्य, राजनीति और धर्म का

[25] वर्मा, महादेवी, साहित्य की आस्था तथा अन्य निबंध, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1970, पृष्ठ संख्या- 168

लक्ष्य होना चाहिए। जब यह लक्ष्य पूरा होगा संभवतः तभी नवजागरण की प्रक्रिया पूरी हो पाएगी।

द्वितीय अध्याय

नवजागरणकालीन स्त्री-चिंतन परंपरा

2.1 नवजागरणकालीन स्त्री-चिंतन की भारतीय पृष्ठभूमि

2.2 हिंदी साहित्य और नवजागरणकालीन स्त्री-चिंतन परंपरा

द्वितीय-अध्याय

नवजागरणकालीन स्त्री चिंतन परंपरा

किसी भी सभ्यता में स्त्री आज जहाँ पहुंची है उसके पीछे उसके सतत संघर्ष की एक लंबी परंपरा है। आज 21वीं सदी में ऐसा कोई कार्यक्षेत्र नहीं है जहाँ स्त्रियों ने अपनी उपस्थिति दर्ज नहीं की हो चाहे वह अन्तरिक्ष की यात्रा हो या कोई सैन्य क्षेत्र अथवा अन्य कोई ऐसा कार्यक्षेत्र जिसे सदियों से पुरुषों के लिए ही अधिकृत समझा जाता था। किन्तु यह सब इतना सहज नहीं था जितना आज हम देख पा रहें हैं। आज विश्व स्तर पर यदि स्थितियाँ कुछ अनुकूल हो पायी हैं तो इसके पीछे महिलाओं का शताब्दियों पुराना संघर्ष है और यह संघर्ष आज भी जारी है। जो मूलतः 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में संगठित हुआ। 19वीं शताब्दी में स्त्रियों ने पुरुषों के साथ समानता और समान अवसर की माँग करना आरम्भ कर दिया था। 1857 में संयुक्त राज्य अमेरिका में महिलाओं और पुरुषों के समान वेतन की माँग को लेकर हड़ताल हुई थी। यह दिन बाद में अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस के रूप मनाया जाने लगा। यही वह दौर था जब यूरोप और एशिया के विभिन्न देशों में भी यह आंदोलन संगठित हुआ। भारत में भी 19वीं शताब्दी नवजागरण और समाज-सुधार का काल था। राजा राममोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती, एनी बेसेंट आदि भारतीय नवजागरण और समाज-सुधार आंदोलन के महत्वपूर्ण नाम हैं। इसी क्रम में महिलाओं की स्थितियों में सुधार के लिए भी संघर्ष शुरू हुआ। जो आगे चलकर एक मुकम्मल स्त्री चिंतन परंपरा का रूप लेता है। प्रस्तुत अध्याय में हम नवजागरण के परिप्रेक्ष्य में भारतीय स्त्री-मुक्ति आंदोलन और स्त्री-चिंतन परंपरा पर विस्तार से विचार-विमर्श किया जाएगा।

हिंदी साहित्य की परंपरा के विकासक्रम में 'नवजागरण' महत्वपूर्ण स्थल है जिसने साहित्य को उसके सामाजिक, राजनैतिक दायित्वों से जोड़ा। यह नवजागरण दूसरी भाषाओं और अनुशासनों की परंपराओं से अछूता हुआ हो और स्वतंत्र रूप से हिंदी में विकसित हुआ हो ऐसा नहीं कहा जा सकता। हिंदी नवजागरण के समय का समाज बहुत उथल-पुथल व वैचारिक आंधियों का समाज है इसलिए लगभग सभी भाषाओं ने अपने-अपने साहित्य को तत्कालीन मुद्दों की बहसों से भर दिया और सुधार आंदोलनों ने मूल सामग्री बन महती भूमिका निभाई। इस क्रम में साहित्य सुधारवादी आंदोलनों के साथ चलता हुआ अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग समय में नवजागरण को लेकर पहुंचा। हिंदी नवजागरण अपने से पहले के नवजागरणों जैसे बंगला, मराठी, मलयालम आदि से प्रभावित माना जा सकता है, एक धड़ा इसे अपनी परंपरा का सहज विकास भी मानता है।

उपर्युक्त बहसों को सामने रखकर हिंदी नवजागरण और स्त्री चिंतन की परंपरा के जिस समीकरण को समझने का प्रयास करते हैं अपने स्वरूप में एक रेखीय नहीं है। नवजागरण कालीन स्त्री चिंतन परंपरा किन्हीं भाषाई खानों में विभक्त होकर विकसित नहीं हुई थी। उसका उद्देश्य समस्त स्त्री जाति का सुधार था इसलिए किसी भाषाई आंदोलन के समानांतर स्त्री चिंतन को समझते हुए दूसरी भाषा की साहित्य संपदाओं की यात्रा करना और सही अर्थों में भाषाओं की मूल सामग्री के संक्रमण के पदचिन्हों को टटोलते हुए ही उसकी किसी परंपरा को प्राप्त किया जा सकता है। हिंदी नवजागरण की स्त्री चिंतन परंपरा को समझते हुए ऐसे ही दूसरी भाषाओं

और अनुशासनों की छानबीन करते हुए स्त्री चिंतन परंपरा और क्रमश: उसकी पृष्ठभूमि की पड़ताल की जाएगी।

2.1 नवजागरणकालीन स्त्री चिंतन की भारतीय पृष्ठभूमि

हिंदी का नवजागरण भविष्य में विकसित अस्मितागत विमर्शों की जमीन है। इसलिए वह उबड़-खाबड़, असमान और पथरीली भी है। इस सुधारवादी समय में पहले - पहल स्त्री के उत्थान के स्वर सुनाई पड़े थे। वह पहली बार अपने अधिकारों की मांग को लेकर घर के बाहर निकली थीं 'स्त्री संघर्ष का इतिहास' में राधा कुमार कहती हैं- "19 वीं सदी को स्त्रियों की शताब्दी कहना बेहतर होगा क्योंकि इस सदी में सारी दुनिया में उनकी अच्छाई - बुराई, प्रकृतिक क्षमताएं एवं उर्वरा गरमा-गरम बहस का विषय थे। यूरोप में फ्रांसीसी क्रांति के दौरान और उसके बाद भी स्त्री जागरूकता का विस्तार होना शुरू हुआ और शताब्दी के अंत तक इंग्लैंड, फ्रांस तथा जर्मनी के बुद्धिजीवियों ने नारीवादी विचारों को अभिव्यक्ति दी। 19 वी सदी के मध्य तक रूसी सुधारकों के लिए 'महिला प्रश्न' एक केंद्रीय मुद्दा बन गया था जबकि भारत में-खासतौर से बंगाल और महाराष्ट्र में समाज सुधारकों ने स्त्रियों में फैली बुराइयों पर आवाज उठाना शुरू किया।"[26] यह हिंदी नवजागरण की जमीन है और यहीं स्त्रियों ने अपनी अस्मिता को पहचाना था। वह परंपरा, जिसमें बौद्ध भिक्षुणियों की थेरी गाथाएं, संत कवयित्रियाँ मीराबाई आदि से लेकर 'सीमंतनी उपदेश' की अज्ञात हिंदू औरत से होते हुए महादेवी वर्मा तक पहुंची थी, इसी जमीन से बलवती हुई थी। हालांकि उस समय स्त्रियां सामाजिक व राजनैतिक क्रियाओं

[26] कुमार, राधा, स्त्री संघर्ष का इतिहास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृष्ठ संख्या-23

में बढ़-चढ़कर हिस्सा ले रही थी, सभाओं का संबोधन कर रही थी किंतु साहित्यक कर्म उतनी मात्रा में संरक्षित नहीं हो सका । जो भी मिले उन्हें अन्य भाषाओं की वैचारिक पृष्ठभूमि से जोड़कर समझने का प्रयास किया जाएगा।

मराठी की पंडिता रमाबाई पुनर्जागरणकालीन समय की स्त्री चिंतन का प्रमुख चेहरा बनी और जिसने आगे चलकर हिंदी नवजागरण के भीतर के स्त्री स्वर को नई दिशा दी। रमाबाई की पुस्तक 'स्त्री पुरुष तुलना' (1882) स्त्री विमर्श का आधार सा बनते हुए दोनों के समान होने की पैरवी करती है और समस्त स्त्री समुदाय से उसे समझने और स्वीकार करने की आशा करती हैं। ताराबाई ने मराठी के साथ अंग्रेजी और संस्कृत का अध्ययन भी किया था। इसलिए वे हिंदी नवजागरण की परंपरा से बहुत दूर की नहीं जान पड़ती। उनका संवाद हिंदी मनीषियों से भी था इसलिए उनका चिंतन हिंदी नवजागरण के स्त्री चिंतन की पूर्व-पीठिका का है जिससे वह सदैव अनुप्राणित होती आई है। ताराबाई ने लिंग भेद के आधार पर स्त्री पुरुष के अधिकारों में फर्क करने और दोहरे मापदंड बरतने के खिलाफ आवाज उठाई वे कहती हैं – "तुमने अपने हाथों में सब धन-दौलत रखकर नारी को कोठी में दासी बनाकर धौस जमाकर दुनिया से दूर रखा। उस पर अधिकार जमाया... नारी को विद्याप्राप्ति के अधिकार से वंचित कर दिया। उसके आने-जाने पर रोक लगा दी। वह जहाँ भी जाती वहीं उसे उसके ही समान अज्ञानी स्त्रियां ही मिलती थीं। फिर दुनियादारी की समझ कहाँ से सीखती वह?"[27] इस रूप में ताराबाई स्त्री के आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक दायरों के संकुचन को प्रकाश में ला रही है जो आगे चलकर विकसित रूप में स्त्री विमर्श का मूल आधार बना। महादेवी वर्मा के स्त्री चिंतन के केंद्र में जो आर्थिक पराधीनता व्याप्त है उसके बीज यहाँ ताराबाई में देखे जा सकते हैं। इसी समय 1882 में अज्ञात हिंदू औरत की 'सीमंतनी उपदेश' कृति प्राप्त होती है जो कि हिंदी नवजागरण

[27] शिंदे, ताराबाई, स्त्री पुरुष तुलना, संवाद प्रकाशन, पृष्ठ संख्या.25

के स्त्री स्वर का अहम बिंदु है। इस कृति में पुरुषों द्वारा स्त्री सत्ता को दोयम दर्जे का बना देने के संदर्भ में सटीक विश्लेषण एवं प्रश्न मिलते हैं। वे कहती है- "उससे जुर्म की गर्द उड़ - उड़कर हमारे ऊपर पड़ती है। जैसे कोई मकान बहुत देर तक गर्द पड़ने से दब जाता है उसी माफिक हमारी हालत है। हम निकलने की ताकत नहीं रखती हैं। जैसे गन्ने का रस निकाल लेने से छिलका रह जाता है, वैसे ही हमारी हालत है।"[28]

यहाँ वह अज्ञात हिंदू औरत तत्कालीन समाज में स्त्रियों की दीन दशा को पहचान रही है और इसलिए वह जगह चिन्हित कर रही है जहाँ से स्त्रियों को आगे बढ़ना है। यह जो गौरवमयी इतिहास की बातें की जाती हैं वह इतिहास स्त्रियों का नहीं है। वे वहाँ से बेदखल कर दी गई है। इसलिए उन्हें अपनी अस्मिता पहचानकर नवनिर्माण करना होगा यह बात पंडिता रमाबाई अपनी कृति 'स्त्री धर्म नीति' में करती हैं। साथ ही 'हिंदू स्त्री का जीवन' में परिवार और समाज नामक संस्था के भीतर स्त्री की स्थिति का विश्लेषण हुआ है। सन् 1870 में उर्दू में नज़ीर अहमद की 'मिरात-उल-उरुस' (गृहिणी दर्पण) स्त्री चिंतन की दृष्टि से महत्वपूर्ण पुस्तक रही जिसमें स्त्री के इल्म हासिल करो की पैरवी के साथ-साथ तमाम मुद्दे उठाए गए हैं। सामाजिक एवं राजनीतिक धरातल पर देखें तो यह समय स्त्रियों के संगठन, आंदोलनों आदि में सक्रियता दिखाने का था। 1917 में एनी बेसेंट, डोरोथी जिनराज दास, मालती पटवर्धन, अम्मुस्वामीनाथन श्रीमती दादाभाई, श्रीमती अंबुजम्माल का मिलकर 'विमेन्स इंडियन एसोसिएशन' की स्थापना; 'बंग महिला समाज', 'अघोरी कामिनी सेवा समिति', महाराष्ट्र में 'सतारा अमलोन्नति सभा', बेंगलुरु में 'महिला सेवा समाज', बनारस में 'भारत महिला परिषद', इलाहाबाद में 'प्रयाग महिला समिति' आदि ने स्त्री को चिंतन के केंद्र में लाया। 1931 में सरोजिनी नायडू का अखिल

[28] (सं) डॉ. धर्मवीर, सीमंतनी उपदेश, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृष्ठ संख्या- 41

भारतीय महिला सम्मेलन की अध्यक्ष बनना भी नवजागरण कालीन 'स्त्री-चेतना ' को दर्शाता है।

हिंदी नवजागरण बहुत कुछ बंगाल के नवजागरण से प्रभावित है। इसलिए उसकी स्त्री चिंतन परंपरा एक-दूसरे से जुड़ती है। बंगाली साहित्य में निरुपमा देवी और अनुपमा देवी नामक उपन्यास लेखिकाओं का ज़िक्र आता है जो साक्षरता क्लब की सदस्य भी थीं। (वेस्ट बंगाल डिस्ट्रिक्ट गजेटीयर परिशिष्ट ए-पी- 733) इसके साथ ही स्वर्णकुमारी देवी और सरला देवी घोषाल महत्वपूर्ण रूप से रेखांकित होती हैं। स्वर्णकुमारी देवी टैगोर की चौथी पुत्री थी। 18 वर्ष की अवस्था में उपन्यास 'दीप निर्माण' प्रकाशित हुआ, 1877 में 'भारती' के संपादक मंडल की सदस्यता ग्रहण की और 1884 में प्रधान संपादक बनीं। पाठ्य पुस्तकें लघु कहानियां, नाटकों समेत 25 किताबें लिखी कुछ उपन्यासों का अनुवाद भी किया। इन्होंने ‘महिला ब्रह्म समाज’ की स्थापना कर स्त्री सुधार के बहुत से कार्य किए। विधवाओं, अनाथों को आश्रय प्रदान करते हुए मेलों में हस्तशिल्प प्रदर्शन कर औरत की आर्थिक दशा सुधारने का कार्य किया। यह सामाजिक क्रियाकलाप साहित्य के लिए कच्चा माल बने फिर सामाजिक विद्रोहों को आगे ले जाने का कारक भी। अन्य संदर्भों की तरह यहां भी बांग्ला साहित्य के नवजागरण ने हिंदी नवजागरण की स्त्री चेतना को उद्दीप्त करने में सहायता की। सरला देवी पुनरुत्थान वादी स्त्री चिंतक थीं। हिंदी नवजागरण में स्त्री चिंता का जो प्रारंभिक स्वरूप था वह भी अपने स्वरूप में सुधारवादी व पुनरुत्थानवादी था। इस परंपरा में इनको जोड़कर समझा जा सकता है। पूरी परंपरा के साथ हिंदी में नवजागरण के स्त्री चिंतन में दो महत्वपूर्ण स्वर जुड़ते हैं- पहला भगिनी निवेदिता और दूसरा भीकाजी रुस्तम जी कामा। भगिनी निवेदिता स्वामी विवेकानंद की शिष्या थी जिनका जोर हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार पर था। इन्होंने स्वदेशी के प्रचार-प्रसार के साथ 'राष्ट्रीय हित' के बारे में गांव-गांव घूमकर प्रचार-प्रसार किया। याद रहे यह 'राष्ट्रीय हित की

चिंता' हिंदी नवजागरण की रीढ़ है। प्रसिद्ध इतिहासकार मनमोहन कौर लिखते हैं- "ऐसा दिखाई पड़ता है कि विद्रोह ने जनाना पर अपनी पकड़ मजबूत कर ली है तथा पर्दे में रहने वाली हिंदू स्त्रियाँ अपने पतियों तथा पुत्रों पर अपने प्रभाव का व्यापक प्रयोग करती हैं...मुझे बताया गया है कि बंगाल में छोटी से छोटी उम्र यहां तक कि अपनी माताओं के पास जनाना में ही रहने वाले बच्चों को भी राज-विद्रोह का पाठ पढ़ाया जाता है तथा उन्हें नन्हे सन्यासियों की वेशभूषा में घर-घर जाकर अंग्रेजों के प्रति घृणा फैलाने को प्रेरित किया जाता है।" यह थी हिंदी नवजागरण की स्त्री चिंतन दृष्टि। मैडम भीकाजी कामा इस परंपरा में बहुत अधिक महत्वपूर्ण कड़ी हैं। कहा जाता है कि हिंदी साहित्य के सर्जकों में ऐसा बड़ा चेहरा जो सीधे तौर पर स्वाधीनता के आंदोलनों में लिप्त हो कोई नहीं है किंतु भीकाजी कामा इसका अपवाद हैं। भीकाजी कामा हिंदी नवजागरण की परंपरा में एक ऐसी सशक्त महिला है जो साहित्य और भाषा की बहसों से नजदीक रहते हुए सामाजिक क्षेत्र में क्रांतिकारी भूमिका निभाती हैं। वह सशस्त्र संघर्ष करके आजादी लेने के पक्ष में थी। 1907 में उन्होंने इंटरनेशनल सोशलिस्ट कांग्रेस में भाग लेकर राष्ट्रीय ध्वज फहराया था। 1909 में एक गुट से जुड़कर 'वंदे मातरम् पत्रिका' का संपादन किया, जिसके अंतर्गत लोगों को शिक्षित करना, युद्ध के लिए तैयार करना तथा पुनर्निर्माण करने की बात की गई थी। ऐसी चर्चाओं में भीकाजी के सम्मिलित होने से स्त्री चेतना के स्वर को समझा जा सकता है। 'तलवार' पत्रिका के अपने लेख में भी कहती हैं- "मैं आप सभी देशभक्तों से अपील करती हूं कि आप ज्यादा से ज्यादा समय तक पश्चिम में रहकर सभी प्रकार का भौतिक प्रशिक्षण प्राप्त करें वह दिन दूर नहीं जब आपको स्वराज तथा स्वदेश की खातिर हमारी प्यारी भारत-भूमि से अंग्रेजों को खदेड़ने के लिए अंग्रेजों पर गोली चलाने का आह्वान किया जाएगा"[29] । एक स्त्री के सशस्त्र क्रांतिकारी बनने की यात्रा को भीकाजी समझती

[29] पुनरुधृत (कुमार, राधा, स्त्री संघर्ष का इतिहास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृष्ठ संख्या – 104)

हैं- “आप लोगों में से कुछ का कहना है कि एक स्त्री के नाते मुझे हिंसा का विरोध करना चाहिए। तीन वर्ष पूर्व मुझे हिंसा की बात करते हुए भी पीड़ा होती थी... परंतु उदारवादीयों की संवेदनहीनता, धोखेबाजी तथा मक्कारी को देखते हुए वह भावना समाप्त हो गई।”[30] मैडम कामा का चिंतन बहुत ही व्यापक था। वे राष्ट्र और अंतर्राष्ट्रवाद की नब्ज़ को पहचानती थी। जब उन्होंने कहा था कि- “दुनिया मेरा देश है तथा हर इंसान मेरा संबंधी परंतु विश्व में अंतर्राष्ट्रवाद की स्थापना से पूर्व मैं राष्ट्रों को तरजीह दूंगी।” तब वे देशों के आपसी संबंधों में स्वार्थ और साम्राज्यवादी लिप्सा की बू को पहचान रही थीं। वे हिंदू-मुस्लिम-सिक्खों के देशवासी के रूप में भाईचारे को भी रेखांकित करती थी।

भीकाजी का हिंदी को देखने, समझने और अपनाने का बहुत उन्नत दृष्टिकोण है। वह ‘भारतीय क्रांति’ को ‘हिंदी क्रांति’ के रूप में परिभाषित करती थी और स्वतंत्र भारत की भाषा के तौर पर हिंदी को देखती थीं। हिंदी नवजागरण और स्त्री चिंतन परंपरा को समझने के लिए भीकाजी कामा महत्वपूर्ण व्यक्तित्व हैं।

2.2 हिंदी साहित्य और नवजागरण कालीन स्त्री चिंतन परंपरा-

हिंदी साहित्य में नवजागरण का आरम्भ भारतेंदु हरिश्चंद्र से माना जाता है। राजा राममोहन राय ने भारतीय नवजागरण सम्बन्धी जिन विचारों को अभिव्यक्ति दी थी हिंदी में उन विचारों को लाने का काम भारतेंदु ने किया ऐसा माना जाता है। पिछले अध्याय में हमने हिंदी नवजागरण पर विस्तार से चर्चा की है अतः वही चर्चा यहाँ दोहराना ठीक नहीं यहाँ वस्तुतः हिंदी साहित्य में उपलब्ध नवजागरणकालीन स्त्री चिंतन परम्परा को समझने का किया जाएगा।

[30] पुनरुधृत (कुमार, राधा, स्त्री संघर्ष का इतिहास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृष्ठ संख्या - 107

वास्तव में जिस प्रकार विश्व के तमाम स्त्री आंदोलनों की शुरुआत पुरुषों ने की उसी प्रकार हिंदी में भी स्त्री चिंतन का आरम्भ पुरुषों से हुआ। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 1874 में स्त्रियों की शिक्षा के लिए 'बालाबोधिनी' नाम की पत्रिका निकाली जो संभवतः स्त्रियों को समर्पित हिंदी की पहली पत्रिका है। इस पत्रिका का उद्देश्य स्त्रियों को शिक्षित करना था। भारतेंदु की इस पत्रिका से हिंदी में स्त्री चिंतन का आरम्भ होता है। स्त्री चेतना के विकास में इस पत्रिका का अविस्मरणीय योगदान है इस पत्रिका में केवल स्त्री सम्बन्धी लेख, विचार आदि छपते थे। भारतेंदु स्त्री शिक्षा के पक्षधर थे। 1873 में 'कविवचन सुधा' में प्रकाशित 'स्त्री शिक्षा' नामक लेख में भारतेंदु कहते हैं कि पश्चिमोत्तर देशों की कभी उन्नति नहीं होगी यदि वहाँ की स्त्री शिक्षित नहीं होगी। वस्तुतः भारतेंदु ने स्त्री शिक्षा की दृष्टि से ही 'बालाबोधिनी' का संपादन भी किया, किन्तु वास्तव में वह शिक्षा पुरुष वर्चस्ववादी शिक्षा थी। भारतेंदु युग का स्त्री-स्वातंत्र्य वास्तव में पुरुष-वर्चस्व के घेरे में ही था। स्त्रियों को लेकर भारतेंदु की शिक्षा नीति कैसी थी इसकी ओर संकेत हम पिछले अध्याय में ही किया गया है कि वह अपना 'देश और कुल-धर्म सीखें' वास्तव में बालाबोधिनी के प्रथम पृष्ठ में एक निवेदन छपता है कि, "मैं जो कुछ कहूँगी तुम्हारे हित की कहूँगी"[31] और अंत में यह आशा भी प्रकट की जाती है कि "सभी स्त्रियाँ पढ़ लिखकर पुरुषों की सहभागिनी हो जाएँ"[32] वास्तव में भारतेंदु का स्त्री-चिन्तन एक अलग ही धारा का स्त्री चिंतन था। वे स्त्रियों को परंपरागत रूढ़ियों से मुक्त तो करना चाहते हैं किन्तु पुरुष वर्चस्व के दायरे से बहार नहीं रखना चाहते हैं। स्त्री को शिक्षित तो करना चाहते हैं किन्तु केवल इतना कि वह अपने पति का सहयोग कर सके और उनकी सहभागिनी बन सके। वस्तुतः भारतेंदु की स्त्री-दृष्टि स्त्रियों को दोयम दर्जे की नागरिकता की वकालत करता है। भारतेंदु का यह दृष्टिकोण ही बाद

---

[31] बालबोधिनी,संपादक-भारतेंदु हरिश्चंद्रएसंकलन-संपादनः वसुधा डालमिया, संजीव कुमार, राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, 2014, पृष्ठ-31

[32] वही, पृष्ठ -32

के साहित्यकारों ने अपनाया मसलन बालकृष्ण भट्ट और प्रतापनारायण मिश्र ने भी अपने निबंधों में स्त्री-मुक्ति की यह सीमा निर्धारण करते दिखाई देंगे। 19वीं सदी में चूँकि पूरे विश्व में स्त्री आन्दोलन बहुत सक्रियता से चल रहा था अतः हिंदी साहित्य में भी उसका प्रभाव पड़ा। हिंदी साहित्यकारों ने भी स्त्री-जागरण में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया किन्तु अपनी पुरुषवादी मानसिकता से बहार नहीं निकल पाए। "स्त्रियाँ किसलिये हैं- हमारे शास्त्रों के अनुसार मर्द को सुख पहुँचना इनका मुख्य काम है"[33] बालकृष्ण भट्ट 'स्त्रियाँ' शीर्षक निबंध का ये पहला ही वाक्य है। प्रतापनारायण मिश्र के यहाँ देखने को मिलता है -"अरबी में नार कहते हैं अग्नि को, विशेषत: नरक की अग्नि को और तत्संबंधी शब्द है नारी। जैसे हिंदुसतान से हिंदुस्तानी बनता है वैसे ही नार से नारी होता है, जिसका भावार्थ यह है कि महादुख रूपी नर्क का रूप गृहस्थी की सारी चिंता, सारे जहान का पचड़ा केवल स्त्री ही के कारण ढोना पड़ता है। फारसी में ज़न (स्त्री) कहते हैं मारने वाले को-राहज़न, नक़बज़न इत्यादि। भला अष्ट मारने वाले का संसर्ग रख के कौन सुखी रहा है। एक फारस के कवि फर्माते हैं, 'अगर नेक बूदे सरंजामे जन, मजन नाम न जन नामें जन', अर्थात् स्त्रियों (स्त्री संबंध) का फल अच्छा होता तो इनका नाम मज्न होता (मा मारय)। अंग्रेजी में वीम्येन (स्त्री) Woman शब्द में यदि एक ई (E अक्षर) और बढ़ा दे तो Woe (वो) शब्द का अर्थ है शोक और म्येन (Man) कहते हैं मनुष्य को। जिसका भावार्थ हुवा कि मनुष्य के शोक का रूप। धन्य! दुष्टा कटुभाषिणी कुरूपा स्त्रियों की कथा जाने दीजिए।"[34]

इन उदाहरणों से हम भारतेंदु युगीन साहित्यकारों की स्त्री-चिंतन दृष्टि का अंदाज़ा लगा सकते हैं। वास्तव में मैनेजर पाण्डेय ने ठीक ही लिखा है - "स्त्री की स्वाधीनता का सवाल हिंदी

---

33 http://www.hindisamay.com/content/2730/1/बालकृष्ण-भट्ट-निबंध-स्त्रियाँ.cspx

34 http://www.hindisamay.com/content/4093/1/प्रतापनारायण-मिश्र-निबंध-स्त्री.cspx

नवजागरण का मुख्य सवाल कभी नहीं बन पाया। वह हमेशा हाशिए पर ही रहा। आरम्भ में स्त्रियों की पराधीनता और उनकी दारुण स्थितियों के बारे में जो चिंता थी, वह भी बाद में कम हो गयी।"[35] इस युग में स्त्री-शिक्षा के नाम पर बहुत से उपन्यास भी लिखे गये – 'भाग्यवती', 'देवरानी जेठानी की कहानी', 'वामा शिक्षक' आदि किन्तु मूलतः यह उपदेशात्मक उपन्यास थे जिनमें स्त्रियों के लिए केवल उपदेश दिए हुए थे। वस्तुतः स्त्री-शिक्षा के प्रारूप और पाठ्यक्रम के विचार से इन सब की राय एक ही थी। स्त्री के लिए आदर्श शिक्षा वही है जो उसे कुशल गृहिणी, समर्पिता पत्नी और कर्तव्य परायण माँ बनाये। उस समय के हिन्दी उपन्यास यही वकालत करते हैं। 'देवरानी जेठानी की कहानी'(1870) और 'भाग्यवती'(1879) इसके सशक्त उदाहरण है। इन दोनों उपन्यासों का लेखन उद्देश्यपूर्ण तरीके से किया गया था। इन दोनों उपन्यासों के केन्द्र में स्त्री शिक्षा है। यह दोनों उपन्यास एक कुशल गृहिणी बनने के सभी गुणों को आधार बना कर लिखे गये हैं। श्रद्धाराम फुल्लौरी 'भाग्यवती' की भूमिका में लिखते हैं- "बहुत दिनों से इच्छा थी कि कोई ऐसी पोथी हिन्दी भाषा में लिखूँ कि जिसके पढ़ने से भारतखंड की स्त्रियों को गृहस्थ धर्म की शिक्षा प्राप्त हो, क्योंकि यद्यपि कई स्त्रियाँ कुछ पढ़ी लिखी तो होती हैं, परन्तु सदा अपने ही घर में बैठे रहने के कारण उनको देश-विदेश की बोल-चाल और अन्य लोगों से बात-व्यवहार की पूरी बुद्धि नहीं होती...और कई विद्या से हीन होने के कारण सारी आयु चक्की और चरखा घुमाने में समाप्त कर लेती हैं।"[36] वास्तव में यह पंक्तियाँ फुल्लौरी के अंतर्द्वंद की ओर भी संकेत करती हैं। एक तरफ तो वह चाहते हैं स्त्रियाँ पढ़े-लिखें, घर से बाहर निकलें, देश-विदेश के बारे में जाने किन्तु दूसरी तरफ वे उन्हें गृहस्थ धर्म की शिक्षा तक सीमित रखना चाहते हैं। पूरे भारतेंदु युग में स्त्री के राजनीतिक, सामाजिक अधिकार की बात भ्रामक तरीके से मिलती है। वे सब चाहते हैं कि स्त्रियाँ पढ़े-लिखे आगे बढ़ें किन्तु पुरुष-सत्ता

[35] पाण्डेय, डॉ. मैनेजर, अनभै साँचा, पूर्वोदय, दिल्ली, 2002, पृष्ठ संख्या-180-181

[36] मधुरेश (सं.), भाग्यवती, यश पब्लिकेशन्स, दिल्ली, संस्करण- 2012, भूमिका से

पर कोई आंच न आये। वे उसे परिवार नामक संस्था से निरंतर जोड़े रखना चाहते हैं, उससे इतर स्त्री का अस्तित्व उन्हें स्वीकार नहीं है।

द्विवेदी युग में स्थितियां कुछ बदली हैं। महावीर प्रसाद द्विवेदी स्वयं स्त्री-शिक्षा के प्रबल पक्षधर थे। वे स्त्री-पुरुष की समानता में विश्वास रखते थे। उन्होंने सन् 1914 में स्त्री शिक्षा के समर्थन में एक लेख लिखा था, जिसका शीर्षक था 'स्त्री-शिक्षा के विरोधी कुतर्कों का खंडन' इस लेख में वे उस समय उन तमाम लोगों और विचारों का खंडन करते हैं जो स्त्री-शिक्षा के विरोध करते हैं। द्विवेदी जी ने उस समय के पढ़े-लिखे 'सुशिक्षित' लोगों को भी फटकारा है जो स्त्री-शिक्षा के विरोध में कुतर्क देते हैं। द्विवेदी जी का यह लेख वस्तुतः उस समय की पत्र-पत्रिकाओं में छपे स्त्री-शिक्षा विरोधी लेखों का जवाब था। द्विवेदी जी लिखते हैं -''मान लीजिए कि पुराने ज़माने में भारत की एक भी स्त्री पढ़ी लिखी न थी। न सही। उस समय स्त्रियों को पढ़ाने की ज़रूरत न समझी गई होगी। पर अब तो है। अतएव पढ़ाना चाहिए। हमने सैंकड़ों पुराने नियमों, आदेशों और प्रणालियों को तोड़ दिया है या नहीं? तो, चलिए, स्त्रियों को अपढ़ रखने की इस पुरानी चाल को भी तोड़ दें।"[37] इस उद्धरण में द्विवेदी जी पर नवजागरण का प्रभाव स्पष्ट झलकता है। वे स्त्री-शिक्षा के लिए तमाम रूढ़ियों को तोड़ने के लिए तैयार हैं। द्विवेदी जी मराठी के स्त्री चिंतन से भी बहुत प्रभावित थे। उन्होंने ताराबाई, रमाबाई, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई और पंडिता गोदावरी बाई की साधना और संघर्षों को अपने लेखों में प्रस्तुत किया है। 'सरस्वती' के संपादक के रूप में उन्होंने 'गुजरातियों में स्त्रियाँ', 'जापान में स्त्रियाँ', 'जापान में स्त्री शिक्षा', 'स्त्री और संगीत', 'स्त्रियों का सामाजिक जीवन' आदि कई लेख लिखे। मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं – "द्विवेदी जी के समाज संबंधी चिंतन के प्रत्येक पक्ष का एक

[37] http://www.philoid.com/epub/ncert/10/160/jhks115

अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ होता था। उनके स्त्री संबंधी चिंतन और लेखन में भी यह संदर्भ मौजूद है।"[38] द्विवेदी युगीन अन्य साहित्यकारों में किशोरीलाल गोस्वामी ने कुछ सामाजिक उपन्यास लिखे हैं जिनमें 'लवंगलता वा आदर्शवाला', 'पुनर्जन्म या सौतियादाह', 'अंगूठी का नगीना' आदि शामिल हैं। जिनमें लेखक ने पारंपरिक दृष्टि ही अपनाई है। अंगूठी का नगीना में सनातन हिन्दू आदर्शों का ही बखान है। पुनर्जन्म व सौतियादह में तो पति की इच्छा मानकर सौत को स्वीकारने की उसकी उदारता में ही स्त्री को पुनर्जन्म देखा और बताया गया है। स्पष्ट है कि किशोरीलाल गोस्वामी की स्त्री-चेतना भी भारतेंदु युग के उपन्यासकारों की भाँति पारंपरिक ही है। वैसे देखा जाए तो द्विवेदी जी भी पुरूष मानसिकता से आगे नहीं निकल पाए हैं। 'जापान की स्त्रियाँ' नामक लेख में उन्होंने लिखा था -''आजकल तो जापन में स्त्री-शिक्षा ने बहुत ही ज़ोर पकड़ा है। बौद्ध धर्म के प्रचार के पहले स्त्रियों की जो स्थिति वहाँ थी उससे भी उनकी आजकल की स्थिति ऊँची हो गई है। जापानियों का अब यह ख़्याल है कि जिसकी स्त्री शिक्षित नहीं उसे पूरा-पूरा सुख कदापि नहीं मिल सकता; उसका जीवन आनंद से नहीं व्यतीत हो सकता; उसे गृहस्थाश्रम का मज़ा हरगिज़ नहीं प्राप्त हो सकता। वहाँ के राजा ने क़ानून जारी कर दिया है कि सात वर्ष की उम्र होने पर लड़कियों को मदरसे भेजना ही चाहिए। न भेजने से माँ-बाप को दण्ड दिया जाता है।''[39] इस उद्धरण में हम देखे तो द्विवेदी जी एक तरफ तो कितने प्रगतिशील समाज का उदाहरण दे रहे हैं जो स्त्री शिक्षा को इतना महत्वपूर्ण समझता है कि उसके लिए कानून जारी कर देता है, वहीं दूसरी तरफ वे 'जिसकी स्त्री' पदबंध का उपयोग करते हैं। अर्थात् वे स्त्री को पुरुष आश्रित ही मानते हैं। उनके अनुसार स्त्रियों का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। जबकि स्त्री-मुक्ति आंदोलन का अंतिम उद्देश्य स्त्री के स्वतंत्र सत्ता की बात करता है। स्पष्ट है कि

---

[38] https://samalochan.blogspot.com/2015/07/blog-post_10.html

[39] http:www.philoid.com/epub/ncert/10/160/jhks115

द्विवेदी जी भी अपने पुरुष मन से बाहर नहीं निकल पाते हैं। किन्तु इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि भारतेंदु ने स्त्री-शिक्षा की जो सीमाएं तय की थी महावीर प्रसाद द्विवेदी उसे तोड़ने का भरसक प्रयास करते हैं जो छायावाद में और विकास पाता है। इसी दौरान सन् 1882 में हिंदी में 'सीमंतनी उपदेश' नाम से एक कृति प्रकाशित होती है जिसकी लेखिका एक अज्ञात औरत है। यह कृति अपने समय के स्त्री चिंतन के सवालों को बहुत प्रखर रूप में सामने रखती है। साथ ही स्त्रियों की मार्मिक स्थितियों को भी बहुत स्पष्ट रूप में सामने लती है। मूल रूप से हिंदी में स्त्री-चिंतन का यह पहला मुकम्मल दस्तावेज है। इसी वर्ष मराठी में भी 'स्त्री-पुरुष तुलना' का प्रकाशन होता है। जिसकी लेखिका ताराबाई शिंदे है। इसी वर्ष एक और कृति 'बनप्रसूत' नाम से बांग्ला में प्रकाशित हुई जो अपने नाम से लेकर कथ्य और रचनादृष्टि तक स्त्री स्वाधीनता और आलोचनात्मक चेतना का प्रमाण है। इस क्रम में हिंदी भारतीय स्त्री-चिंतन परम्परा से जुड़ते हुए स्त्री-स्वाधीनता के आंदोलन को और मजबूत करती है। इसकी चर्चा पूर्व में विस्तार से की जा चुकी है अतः यहाँ दोहराव उचित न होगा।

'सीमंतनी उपदेश' के सन्दर्भ में ये विचारणीय बात है कि कैसे हिंदी में स्त्री चिंतन की इतनी महत्वपूर्ण कृति 100 वर्ष से भी अधिक समय तक हिंदी समाज से गायब रही। इसे खोजने और प्रकाशित करने का काम 1988 में डॉ. धर्मवीर ने किया। 'सीमंतनी उपदेश' में लेखिका ने हिन्दू समाज की कुप्रथाओं का बहुत तर्कपूर्ण ढंग से विरोध किया है। इस तरह का स्वर न भारतेंदु युग में मिलता है और न द्विवेदी युग में। 'सीमंतनी उपदेश' के बाद हिंदी में भारतीय स्त्रियों की दशा के बारे में महादेवी ने लिखा है। जब से छायावाद की सामाजिक और राजनीतिक व्याख्याएँ की जाने लगी, वह अन्य विमर्शों की तरह स्त्री चिंतन की परंपरा को भी समझने के उर्वर स्थल की भांति देखा जाने लगा। इस युग के साहित्य का कलेवर बहुत कुछ वैयक्तिक एवं मानसिक अनुभूतियों से निर्मित हुआ ।इसलिए इस युग के चेतन और अवचेतन

दोनों ही स्तरों पर स्त्री चेतना की परख को समझते हुए इस परंपरा के विकास की बारीक परतों को समझा जा सकता है। रीतिकालीन स्त्री जो पुरुष लेखन में महज भोग्या के रूप में प्रस्तुत की जा रही थी, यहाँ नवीन सामाजिक संदर्भों में परिभाषित होने लगी। स्त्री लेखिकाएं साहित्य जगत में प्रत्यक्ष पैठ करने के क्रम में आयीं और उस इतिहास परंपरा में जहां से उनका निर्वासन हो चुका था, अपनी सुदृढ़ उपस्थिति दर्ज कराई। उन्होंने स्त्री जाति के मुद्दों को जितनी स्पष्टता से समझा और उससे अधिक दृढ़ता के साथ उनकी प्रस्तुति की। स्त्री लेखिकाओं के अतिरिक्त अन्य लेखन में भी स्त्री साहित्य के केंद्र में आ गई। कुछ आलोचक तो इस युग के लेखन की स्त्री केंद्रिकता को देखते हुए इसे 'सजनी सखी संप्रदाय' कहने लगे। छायावादी युग में स्त्री चिंतन का सबसे विकसित एवं व्यवस्थित रूप महादेवी वर्मा के साहित्य में मिलता है। महादेवी वर्मा स्वयं स्त्री होते हुए, स्त्री चिंतन पर रचना कर्म कर रही थीं यह हिंदी साहित्य के 'स्त्री के अस्मितागत विमर्श' के लिए बहुत महत्वपूर्ण साबित हुआ। स्त्री चिंतन की दृष्टि से महादेवी वर्मा का गद्य विशिष्ट रूप से महत्वपूर्ण है। 'शृंखला की कड़ियां' तो वैश्विक परिदृश्य में स्त्री लेखन का दस्तावेज है जो सीमोन द बोउवार और जर्मन ग्रेयर के लेखन के समकक्ष है। काव्य में महादेवी की स्त्री चेतना समझने की जमीन अलग है और एक लंबे अरसे तक इस भिन्नता को समझे बिना उसे रहस्यवादी शब्दावलीयों भर से ही परिभाषित किया जाता रहा। आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने इस संदर्भ में कहा है– "महादेवी की कविता चाहे जिस लोक में विचरण करती हो और चाहे जिस प्रियतम के पीछे पड़ी हो, उसकी ऊपरी रूपरेखा चाहे जैसी भी हो- उसमें नवीन विषम परिस्थितियों की प्रतिक्रिया काव्य के करुण संवेदनों के रूप में दिखाई देती है"[40] ।महादेवी के

---

[40] वाजपेयी, आचार्य नंददुलारे, हिंदी साहित्य बीसवीं शताब्दी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2007, पृष्ठ- विज्ञप्ति

काव्य में रहस्य के पर्दे के पीछे दुनिया और उस दुनिया की पीड़ा को समझने और महसूस करने की आवश्यकता है। वह पीड़ा सीधे तौर पर स्त्री जाति की पीड़ा से जुड़ती है जब वे कहती हैं–

"मेरी लघुता पर आती जिस
दिव्य-लोक की व्रीड़ा
उसके प्राणों से पूछो
वे पाल सकेंगे पीड़ा?"[41]

महादेवी 'दिव्य लोक' की 'दिव्यता' को पहचानती हैं जिसने सतत शोषण की लंबी परंपरा में स्त्री की दुनिया की परिधि को न्यूनतम कर दिया है और अब उसकी तथाकथित लघुता पर अट्टहास कर रहा है। स्त्री पर सौंदर्य का सारा बोझ डालकर घर के बाहर के सभी सामाजिक, राजनैतिक, अधिकारों व दखलों से वंचित कर दिया गया। आधुनिक समाज में जब स्त्री को थोड़ी बहुत सहूलियत मिली भी है वह इसी सौंदर्य बोझ के नवीन संस्करण जो सीधे बाज़ारवाद से जुड़ा है, के चलते तिलांजलित हुई जा रही है। महादेवी कहती हैं –

"हमने कारागार बसाया
बेड़ी हथकड़ियों के गहने
हमने अब हंस-हंसकर पहने
काली फाँसी की डोरी को
हमने तो जयमाल बनाया।"[42]

---

[41] https://www.hindi-kavita.com/HindiNeeharMahadeviVerma.php

[42] आजकल (पत्रिका), मार्च, 2007, वर्मा, महादेवी, आज खरीदेंगे ज्वाला में, पृष्ठ संख्या - 80

यहाँ महादेवी अपनी स्त्री जाति की भी जवाबदेही तय कर रही हैं। वे अपनी स्थिति को पहचानकर भविष्य के मार्ग चिन्हित करती हैं। जब वे कहती हैं कि 'पंथ होने दो अपरिचित, प्राण रहने दो अकेला' तो वे अपने विद्रोह को दिग्भ्रमित न मानते हुए साहस, एकनिष्ठता और कर्मठता से स्वतःस्फूर्त स्थापित कर रही होती हैं। कविता जिस पर बार-बार रहस्यात्मकता और भावुक अस्पष्टता के मुलम्मे चढ़ाए जाते रहे वह कितनी निर्भीक और सशक्त थी इस उदाहरण में देखा जा सकता है –

"वंदिनी जननी! तुझे हम मुक्त कर देंगे
श्रृंखलाएं ताप के उर से गलेंगी
भित्तियां यह लौह की रज मिलेंगी।"[43]

सुभद्रा कुमारी चौहान सामाजिक और राजनीतिक आंदोलनों से सीधे तौर पर जुड़ी थी इसलिए उनका साहित्य इन क्षेत्रों से संबद्ध प्रश्नों, अनुभव खण्डों, विचार श्रृंखलाओं से भरा था। राष्ट्रीय जागरण उनका लक्ष्य था और स्वयं उसकी प्रतिभागी होने के कारण वे स्त्री भागीदारी की महत्ता को समझती थी। सुधा अरोड़ा इनकी कहानियों की विशेषता बताते हुए लिखती हैं –

"सुभद्रा के जीवन के बारे में जानने के बाद हम उनकी कहानियां
पढ़ें तो स्पष्ट हो जाता है कि सुभद्रा जी ने अपने जेल जीवन, अपने परिवेश,

[43] वर्मा, महादेवी, यामा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, 2010, पृष्ठ संख्या - 118

अपने इर्द-गिर्द के चरित्रों को ज्यों का त्यों किरदारों में ढाल दिया है इसलिए उनकी कहानियों में ना बनावट है ना बुनावट।"[44]

स्त्री होने की परंपरा में शताब्दियों बाद उसके अनुभव खंडों का नवीन क्षेत्रों से जुड़ना सर्वथा नवीन और क्रांतिकारी बात थी। स्त्री जाति की प्रतिनिधि होते हुए वे उनकी सामाजिक व राष्ट्रीय जीवन में भूमिका समझते हुए नई जमीन बना रही थी उनके कष्टों और शोषण को समझ रही थी। अपने पत्र में जब वे कहती हैं –

"विश्वास, इतनी कोमलता और इतना प्रेम शायद इसलिए भर दिया है कि वह पग-पग पर ठुकराई जावे। जिस देवता के चरणों पर हम अपना सर्वस्व चढ़ाकर केवल उसकी कृपा दृष्टि की भिखारिन बनती है, वही हमारी तरफ आंखें उठाकर देखने में अपना अपमान समझता है।"[45]

तब वे स्त्री के पारंपरिक आदर्शों को निरर्थक बता कर ध्वस्त करती नजर आती हैं। कोमल, सहज, विश्वास लेने वाली, त्यागमयी, देवी तुल्य स्त्री जिसे अक्सर पुरुष आदर्श रूप में देखते हैं, सुभद्रा उससे अलग झांसी की रानी को स्त्री आदर्श के रूप में स्थापित करती हैं। 'खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी' अकेली पंक्ति सुभद्रा का परिचय देने के लिए पर्याप्त है। 'मर्दानी' शब्द पर बहस एक अलग संदर्भ है जिसे युग की सीमा के रूप में देखा जा सकता है।

सुभद्रा कुमारी चौहान छायावाद की प्रमुख स्त्री चिंतकों में से थी वह हिंदी की शुरुआती स्त्री विमर्शकार के रूप में प्रमुखता से स्थापित है। उनके बारे में हल्का प्रकाश ने कहा है –

---

[44] कथादेश, साहित्य संस्कृति और कला का समग्र मासिक, अक्टूबर 2004, संपादक हरिनारायण, लेख- एक विद्रोहिणी कवयित्री के सामाजिक सरोकारों का पुनर्पाठ, सुधा अरोड़ा, पृष्ठ- 53

[45] 10 /09/1931, पति को लिखे पत्र से, pustak.org : भारतीय साहित्य संग्रह भारतीय साहित्य का अद्वितीय संकलन

"सुभद्रा कुमारी चौहान को सामाजिक जीवन में स्त्रियों को संगठित करने में महत्वपूर्ण भूमिका थी वह स्त्री स्वतंत्रता की हमेशा वकालत करती थी साथ ही राष्ट्रवादी नेतृत्व की भी तारीफ करती थी।"[46]

जयशंकर प्रसाद इस युग की स्त्री चेतना को समझने का प्रमुख बिंदु हैं। जिन्होंने 'ध्रवस्वामिनी' जैसा नायिका प्रधान नाटक लिखा और स्त्री के व्यक्तित्व की तमाम संभावनाओं को जीवित किया जिन्हें प्राय: स्त्रीत्व के ढांचे में ढालने के क्रम में समाज एक लंबे अरसे से दमित करता आ रहा है। 'आंसू' जैसी कृति भी समाज द्वारा बनाए गए पुरुष की 'इमेज' को तोड़कर रख देती है। एक नायक को रोते हुए प्रस्तुत करना वह भी एक स्त्री के लिए यह प्रसाद का तत्कालीन समय में दुस्साहस ही था। इसी के समानांतर प्रेमचंद भी अपने कथा साहित्य में लिख रहे हैं कि 'जब पुरुष में स्त्री के गुण आ जाते हैं तो वह महात्मा बन जाता है' तो वह भी उस पक्ष को समझ रहे थे, जिसे जयशंकर प्रसाद जब आंसू में कहते हैं कि-

"मेरी अनामिका संगिनी
सुंदर कठोर कोमलते
हम दोनों रहे सखा ही
जीवन पथ चलते – चलते"[47]

(आंसू)

[46] प्रकाश, अलका, नारी चेतना के आयाम पृष्ठ संख्या -5

[47] (सं) चौधरी, सिंह, डॉ. लाल, प्रसाद रचनावली -1, भारत प्रकाशन, दिल्ली, 2012, पृष्ठ संख्या – 56

सबसे पहले तो वे स्त्री को सखा रूप में स्थापित करके उसे देवी या कुलटा के अतिवादी विचार से इतर मनुष्य, साथी रूप में रख स्त्री-पुरुष की समानता की स्थापना कर रहे हैं। जहां स्त्री 'पैसिव' फॉर्म में न आकर स्वतंत्र सत्ता के रूप में स्थापित है इसके अलावा एक महत्वपूर्ण बिंदु कि समाज में स्त्री पुरुष को लेकर कोमल-कठोर, कोमल-दृढ़ की जो 'बाइनरी' निर्मित की जाती है, उसे प्रसाद तोड़ कर रख देते हैं। निश्चित ही यह स्त्री चिंतन का उत्कर्ष ही था। कामायनी में भी 'तुम भूल गए पुरुषत्व मोह में कुछ सत्ता है नारी की' में पुरुषवादी सत्ता के द्वारा स्त्री की दुर्दशा किए जाने के कारण तीव्र तिरस्कार दिखता है।

इन सब से इतर प्रसाद की लेखनी कई जगह चूकी भी है। जिसका कारण उनके युग की सीमा और स्वयं एक पुरुष होना है, जो पितृसत्तात्मक समाज में पला-बढ़ा है। ऐसी स्थितियां अधिकतर अचेतन स्तर पर घटी हैं मसलन उनका स्त्री के हृदय पक्ष (श्रद्धा) को उसके बुद्धि पक्ष (इड़ा) से अधिक महत्ता देना, बुद्धि को सम्मान की दृष्टि से न देखना। प्रसाद यहाँ स्त्री के लिए त्याग की मूर्ति और भावुक आदि पारंपरिक रूढ़ प्रतिमानों का प्रयोग करते दिखाई देते हैं। दुख-असहायता, निर्बलता से स्त्री पक्ष को जोड़ना आदि उनकी पारंपरिक मानसिकता को दिखता है।

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला का साहित्य स्त्री चिंतन की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। जब लिखते हैं कि -

"एक क्षण के बाद वह काँपी सुघर
ढुलक माथे से गिरे सीकर
लीन होते कर्म में फिर ज्यों कहा
मैं तोड़ती पत्थर।"[48]

[48] http://kavitakosh.org/kk/तोड़ती_पत्थर_/_सूर्यकांत_त्रिपाठी_%22निराला%22

यहाँ वे स्त्री के परंपरागत सौंदर्य के प्रतिमानों को छोड़ नवीन प्रतिमान 'श्रम के सौंदर्य' को स्थापित कर रहे हैं। वे इस तथ्य को समझते हैं कि स्त्री का रूप-सौंदर्य अपनी संरचना में मध्यकालीन एवं सामंती है। आधुनिक युग में जब स्त्री महलों से निकलकर बाहर की दुनिया में कदम रखेगी तब उसे नवीन सौंदर्य-बोध की आवश्यकता होगी, निराला ने उस सौंदर्य-बोध को आधुनिकता की उस नींव पर रचा जो समता, स्वतंत्रता और आत्मनिर्भरता से बनी है। ध्यान रहे कि कवि स्त्री जाति की वर्ग संरचना को भी समझ रहा है, और अभिजात्य स्त्री की अपेक्षा आम मजदूरन को अपनी नायिका के रूप में देख रहा है।

'सरोज स्मृति' में भी निराला अपनी पुत्री की मृत्यु पर जो विलाप करते हैं वह परंपरागत सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को चुनौती देने वाला है। समाज में जहां पुत्री और पिता के बीच 'लैंगिक असहजता' के चलते अंतरंग घनिष्ठता के लिए मनाही रहती है, वहीं निराला 'सरोज स्मृति' में यह कहकर कि– 'पुष्प सेज तेरी स्वयं रची', संबंधों की नई व्याख्या करते दिखाई देते हैं। इस तरह वह स्त्री पर लदी उस लैंगिकता का भार, अवश्य थोड़ा कम करते हैं। 'पंचवटी प्रसंग' में भी निराला की उन्नत स्त्री दृष्टि के दर्शन होते हैं। जब वे शूर्पनखा को एक राक्षसी के परंपरागत नकारात्मक अर्थों में प्रस्तुत करने के स्थान पर नवीन दृष्टिकोण अपनाते हैं। इस प्रश्न पर हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं -"शूर्पनखा शायद एकदम नए ढंग से प्रस्तुत की गई है किसी विभत्स राक्षसी के रूप में नहीं।"[49] इसी कृति में वह औरत की स्वतंत्रता की पैरवी करते हुए राम के मुंह से प्रेम की नई व्याख्या करवाते हैं जहां स्त्री की स्वतंत्रता अनिवार्य कहते हैं-

"छोटे से घर की लघु सीमा में
बंधे हैं क्षुद्र भाव यह सच है प्रिये

[49] द्विवेदी, हजारी प्रसाद, हिंदी साहित्य उद्भव और विकास, राजकमल प्रकाशन, 1987, पृष्ठ संख्या -270

प्रेम का पयोनिधि तो उमड़ता है
सदा ही नि:सीम भू पर।"

(निराला)

इन सब के बाद भी कुछ जगह निराला पितृसत्तात्मक हो जाते हैं। कई जगहों पर वे 'पौरुष' को जिसे शक्ति, बाहुबल, हिंसा से जोड़कर देखा जाता है उसे बिना किसी प्रतिरोध के अपनी कृति में आने देते हैं। 'जूही की कली' का वह प्रसिद्ध बिंब-

"निर्दय उस नायक ने
निपट निठुराई की
कि झोंकों की झाड़ियों से
सुंदर सुकुमार देह सारी झकझोर डाला,
मसल दिए गोरे कपोल गोल;
चौंक पड़ी युवती -
चकित चितवन निज चारों ओर फेर,
हेर प्यारे को सेज-पास,
नम्रमुख हँसी खिली"[50]

पौरुष के प्रदर्शन और स्त्री के निरीह समर्पण के अलावा कुछ नहीं है। मनोवैज्ञानिक सत्य है कि 'स्त्री हिंसक, बाहुबली पुरुष की ओर आकर्षित होती है' और जिसे पुरुषों द्वारा ही रचा गया है; निराला उससे संक्रमित जान पड़ते हैं। अनेक मुहावरों (जैसे- औरत की जानिब मैदान छोड़कर भागना आदि) के साथ स्त्री के सौंदर्य को गोरे रंग से व उसका विपरीत कुरूपता को काले रंग से जोड़ते हैं, जो उनके अवचेतन मन की स्त्री चेतना को दर्शाता हैं।

---

[50] (सं) शरद, ओंकार, निराला ग्रंथावली-1, प्रकाशन क्रेंद्र, लखनऊ, 1973

सुमित्रानंदन पंत छायावाद के प्रमुख कवि हैं किंतु स्त्री चेतना का, उनके यहां वह स्वर नहीं मिलता जो महादेवी, प्रसाद, निराला के साहित्य में मिलता है। उनका साहित्य बहुत कुछ यथार्थ की पथरीली जमीन के ऊपर बहती हवा की रूमानियत को छूता है इसलिए यह स्त्री चिंतन बाकियों से कुछ अलग दिखाता है ।उनका यह कहना है कि-

"छोड़ द्रुमों की मृदु छाया
तोड़ प्रकृति से भी माया
बाले! तेरे बाल-जाल में
कैसे उलझा दूं लोचन ?
भूल अभी से इस जग को !"[51]

उनकी यही सोच उसी मध्यकालीन दृष्टि को दर्शाती है जहां स्त्री को साधना के मार्ग से भटकाने वाली कर्तव्य विमुख माना जाता था इसी तरह वे प्रतीकों को बिना कोई परिवर्तन किए सीधे कविता में उतार देते हैं। जो अपने आप में कतई आधुनिक नहीं है सीता, अहिल्या को पारंपरिक संदर्भ में प्रस्तुत करना लेखक को उन पात्रों के शोषण और पीड़ा को मूर्ख समर्थक साबित करता है।

पंत ने जहां आधुनिक नवीन चेतना वाली स्त्री की बात की है वह कोमलता एवं सौम्यता की वजह से उतनी प्रभावी नहीं दिख पाती है। उदाहरण -

"मेरे सपनों की स्त्री
कल रूप धरेगी
वह युग - आत्मा,

[51] http://kavitakosh.org/kk/छोड़_द्रुमों_की_मृदु_छाया_/_सुमित्रानंदन_पंत

मैं युग की स्वर - काया हूँ"[52]

इस तरह प्रेम के रूमानी काव्य में स्त्री की सौम्य और भावात्मक छवि प्रस्तुत हुई है। कहीं-कहीं उनकी दैवीय छवि भी चित्रित हुई है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि 19 वीं शताब्दी में जो स्त्री संघर्ष विश्व के अन्य देशों में शुरू हुआ था उस संघर्ष में भारत ने भी अपनी भूमिका निभायी। भारत में केरल, महाराष्ट्र और बंगाल से संघर्ष शुरू होता है जहाँ केरल में महिलाएं 'संबंधम्' जैसी महिला विरोधी परंपरा के विरुद्ध आवाज उठती हैं। वहीं बंगाल और लगभग उत्तर भारत में महिलाओं पर होने वाली क्रूर व हिंसात्मक 'सती प्रथा' का विरोध बंगाल से राजा राममोहन रॉय द्वारा शुरू होता है। महाराष्ट्र में ज्योतिबा फूले और सावित्री बाई फूले स्त्री शिक्षा के लिए संघर्ष शुरु करते हैं। हिंदी पट्टी में इस तरह का संघर्ष उतनी मजबूती से नहीं नज़र आता। 'अज्ञात हिन्दू औरत' की एक आवाज उठती भी है तो उसे दबा दिया जाता है। संभव इस तरह की एक नहीं कई और आवाजें उठी होंगी जिसे सीमंतनी उपदेश की भांति गायब कर दी गयी और अब तक उसके अवशेष न मिले हों। बहरहाल जो भी हो इस बात से इसका अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि उस दौर में पुरुष सत्ता कितनी मजबूती से कायम थी। भारतेंदु के लेखन से भी यही पता लगता है।

स्त्री चिंतन की जो धारा नवजागरण काल में भारत में मौजूद है और विशेषकर हिंदी में उसकी अपनी सीमाएँ है किन्तु फिर भी उनके महत्व को नकारा नहीं जा सकता। भारतेंदु-काल में स्त्रियों की स्थिति कैसी थी ये हम 'सीमंतनी उपदेश' में देख आये हैं। भारतेंदु के लेखन से यह कुछ शिथिल हुई होगी जिसका विकास द्विवेदी युग में हुआ और फिर छायावाद, प्रगतिवाद आते-आते हिंदी क्षेत्र में भी स्त्री संघर्ष ने जोर पकड़ लिया। छायावाद में सबसे

[52] कुमार, विमल, सुमित्रानंदन पंत रचना संचयन, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या - 83

महत्वपूर्ण काम महादेवी ने किया। उन्होंने स्त्री संघर्ष को अपने लेखन में लाया और कई सवाल खड़े किए। चूँकि वह स्वयं भी स्त्री थीं अतः उनके लेखन में भोग्य स्थितियां भी आयी हैं। छायावाद के अन्य कवियों में जैसा कि पहले ज़िक्र हुआ है पुरुष मानसिकता हावी है किन्तु उन्होंने भी स्त्री संघर्ष को मज़बूत करने में अपनी भूमिका अदा की है। संभवतः यह नवजागरण का ही प्रभाव था। स्वतंत्रता आंदोलन से महिलाओं को जोड़ने का काम महात्मा गांधी ने किया। वास्तव में महात्मा गाँधी ब्रिटेन के महिला आंदोलन से बहुत प्रभावित थे। अतः दक्षिण अफ्रीका और बाद में भारत में भी गांधी ने महिलाओं को आंदोलन का हिस्सा बनाया। भारत में महिला मताधिकार को लेकर अलग से कोई आंदोलन नहीं हुआ इसका मूल कारण रहा कि गांधी जी ने इसे स्वतंत्रता आंदोलन का ही हिस्सा बना दिया। हालांकि पुरुष होने के कारण गांधी में भी एक द्वंद्व दिखता है किन्तु फिर भी उन्होंने महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए कई तरह की रूढ़ियों पर प्रश्न किया। वास्तव में गांधी स्त्रियों के सवाल पर किसी तरह के समझौते के पक्ष में नहीं थे। इन्हीं सब के प्रभाव से प्रेमचंद के यहाँ भी 'धनिया' के रूप में एक मज़बूत स्त्री खड़ी मिलती है।

इस रूप में नवजागरणकालीन स्त्री चिंतन परंपरा के विकास को भारत और विशेषकर हिंदी साहित्य के परिप्रेक्ष्य में समझा जा सकता है।

तृतीय अध्याय

श्रृंखला की कड़ियाँ में स्त्री-चिंतन

3.1 'श्रृंखला की कड़ियाँ' निबंधों का विवेचन: स्त्री चिंतन की एक भूमिका

तृतीय अध्याय

श्रृंखला की कड़ियाँ में स्त्री-चिंतन

हर रचना अपने परिवेशगत तात्कालिक प्रभावों का परिणाम होती है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं होता है कि वह वर्तमान का प्रतिबिम्ब मात्र ही रह जाए। वर्तमान को बेहद बारीकी के साथ प्रभावित करने वाली संवेदना और विचारात्मकता के अंतर्सूत्र अतीत में कहीं मौजूद रहते हैं जो कभी सांस्कृतिक विरासत का रूप लेकर प्रत्यक्ष होते हैं तो कभी प्रतिक्रिया स्वरूप वैचारिक क्रांति के रूप में उभर के आते हैं। भारतीय स्त्री विमर्श क्रांति का परिणाम है। आधुनिक समय का प्रारम्भ नवजागरण की पृष्टभूमि में हुआ है। हिन्दी नवजागरण में जो स्त्री अस्मिता की पहचान के विमर्श से शुरू होता है, जिसका एक प्रतिमान महादेवी वर्मा के साहित्य में मिलता है। इस स्त्री अस्मिता का जो विमर्श है वह तत्कालीन परिस्थितियों की सीमा में रहते हुए भी 'श्रृंखला की कड़ियां' में एक बड़े कलेवर में मौजूद है। स्त्री विमर्श की वैचारिक क्रांति जो आज 21 वीं शताब्दी में हिन्दी साहित्य में वर्तमान है उसका नवजागरणकालीन नमूना महादेवी वर्मा की कृति 'श्रृंखला की कड़ियाँ' में विवेचित है।

जब स्त्री चेतना का आज इक्कीसवीं शताब्दी में एक आंदोलन का रूप ले चुकी है, इससे पूर्व बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में महादेवी वर्मा का स्त्री चिंतन भारतीय साहित्य के लिए ही नहीं इस समाज के सुधारवादी पुरोधा की तरह है। यह स्त्री चेतना 'श्रृंखला की कड़ियाँ' के अतिरिक्त उनके गद्य साहित्य में भी देखी जा सकती है। उनके रेखाचित्र और संस्मरण में नारी चेतना की एक पारंपरिक संस्कृति मिलती है। उनके सम्पूर्ण साहित्य में इस स्त्री चेतना का आज के सन्दर्भ में जीवंत विश्लेषण

मिलता है। इसी कारण, स्त्री विमर्श के संदर्भ में उनकी गद्य रचनाओं का मूल्यांकन आवश्यक हो जाता है। 'भारतीय संस्कृति और नारी' में उन्होंने भारतीय परम्परा की नारी की सामाजिक-स्थिति को स्त्री-जागृति का एक वैचारिक आयाम दिया है। इस स्थिति की व्याख्या, प्राचीन स्त्री के माध्यम से कर वह स्त्री-आत्मविश्वास का शंखनाद करती हैं। पुरुष प्रधान समाज में स्त्री की सामाजिक स्थिति का ही नहीं वह स्त्री और पुरुष दोनों की सूक्ष्म मानसिक स्थितियों की व्याख्या करती हैं। महादेवी 'लछमा' कहानी में एक जगह लिखती हैं कि "एक पुरुष के प्रति अन्याय की कल्पना से ही सारा पुरुष-समाज उस स्त्री से प्रतिशोध लेने को उतारू हो जाता है और एक स्त्री के साथ क्रूरतम अन्याय का प्रमाण पाकर भी सब स्त्रियाँ उसके अकारण दंड को अधिक भारी बनाए बिना नहीं रहती। इस तरह पग-पग पर पुरुष से सहायता की याचना न करने वाली स्त्री की स्थिति कुछ विचित्र सी है। वह जितनी ही पहुंच के बाहर होती है, पुरुष उतना ही झुंझलाता है और प्रायः यह झुंझलाहट मिथ्या अभियोगों के रूप में परिवर्तित हो जाती है।"[53] इससे महादेवी वर्मा का स्त्री चेतना के प्रति समर्पित व्यक्तित्व पता चलता है। उनकी स्त्री चेतना को रहस्यवाद, दुखवाद, भावुकता की कवयित्री बोल कर इस पुरुषवादी समाज ने उनकी स्त्री चेतना को नजरंदाज ही किया है। लेकिन हिंदी साहित्य का मूल्यांकन करते हुए यह याद रखना होगा कि महादेवी आधुनिक युग की सृजनशील चेतना हैं। उन्होंने आधुनिक स्त्री पर विचार करते हुए लिखा है कि भारतीय नारी को पुरुष के समकक्ष सामर्थ्यवान होना होगा। 'आधुनिक नारी: उसकी स्थिति पर एक दृष्टि' में वह लिखती हैं कि "एक ओर परंपरागत संस्कार ने उसके हृदय में यह भाव भर दिया है कि पुरुष विचार, बुद्धि और शक्ति में उससे

[53] https://feminisminindia.com/2017/03/05/mahadevi-varma-essay-hindi/

श्रेष्ठ है और दूसरी ओर उसके भीतर की नारी प्रवृत्ति भी उसे स्थिर नहीं रहने देती।"[54] महादेवी स्त्री को शरीर तक सीमित नहीं रखती हैं वह उसे सामाजिक और जैविक रूप से एक व्यक्ति होने पर बल देती हैं ठीक यही बात नासिरा शर्मा भी कहती हैं, कि "अनियंत्रित वासना का प्रदर्शन स्त्री के प्रति क्रूर व्यंग ही नहीं जीवन के प्रति विश्वासघात भी है।"[55] स्त्री इस पृथ्वी की जननी है और वह इस ब्रम्हाण्ड में उतनी ही प्रासंगिक है जितना कि सृष्टि को रचने वाली कोई शक्ति।

'श्रृंखला की कड़ियाँ' भारत में स्त्री-चिंतन की उस प्रक्रिया की परिणति है जो नवजागरण नाम से सामाजिक-संस्कृति के रूप में भारतीय इतिहास में अंकित है। यह आरंभ में भारतीय नारी चेतना के इतिहास से जुड़ता है। 'श्रृंखला की कड़ियाँ' पर बात हिन्दी नवजागरण के संदर्भ में की जा रही है। इसलिए यह ध्यान रखना आवश्यक है कि भारतीय नवजागरण के शुरूआती दौर में जब समाज में स्त्री की स्थिति का प्रश्न महत्वपूर्ण था। उस समय स्त्री की स्वाधीनता का प्रश्न उतना महत्वपूर्ण नहीं था जितना की स्त्री के जीने का अधिकार महत्वपूर्ण था। सती-प्रथा, विधवाओं की दयनीय स्थिति, स्त्री अशिक्षा और स्त्री को सिर्फ पुरुष की भोग्या के रूप में देखने जैसी मान्यताएँ और रिवाज थे। नवजागरण के प्रणेताओं द्वारा इनका विरोध, सैद्धांतिक रूप से स्त्री विमर्श का प्रथम चरण था। भारत में इस समय स्त्रियों द्वारा अधिकार मांगने की क्रांति नहीं हुई थी, बल्कि स्थिति के मूल्यांकन और विवेचन का समय था।

---

[54] वर्मा, महादेवी, श्रृंखला की कड़ियाँ, तृतीय सं. लोकभारती-2001, पृष्ठ संख्या - 13

[55] शर्मा, नासिरा, आधा आबादी और इलाहाबाद-हिंदी अनुशीलन, जून-2004, पृष्ठ संख्या - 42

भारत में स्त्री-चिंतन पर बात करते हुए हम प्रायः पश्चिम की ओर देखते हैं। 70 के दशक में पश्चिम की ओर से आए नारी आंदोलन की ओर हमारी दृष्टि टिकी हुई रहती है। किन्तु उससे बहुत पहले महादेवी के यहाँ हमें स्त्री-चिंतन का संघर्ष दिखाई पड़ता है, जिसका प्रमाण हमें 'शृंखला की कड़ियाँ' में मिलता है। लेकिन यह चिंतन स्त्री अस्मिता की सत्तर के दशक के स्त्री-चिंतन से अलग है। सत्तर के दशक में जब यूरोपीय स्त्रीयाँ अपने अधिकारों के लड़ती हैं, संघर्ष करती हैं तब महादेवी स्त्री के मूल्यों को रेखांकित कर रही होती हैं। महादेवी स्त्री-जाति की उन खूबियों को बताती हैं जिन्हें पुरुष समाज स्त्री की कमजोरी समझता है। 'युद्ध और नारी' नामक निबंध में वह स्त्री की उन क्षमताओं पर दृष्टिपात करती हैं जो प्राकृतिक रूप से केवल स्त्रियों को ही मिले हैं। उनका चिंतन दार्शनिक तौर पर स्त्री के उन संवेदनशील पक्षों को रेखांकित करता है जिन पक्षों को इस पुरुष समाज ने स्त्री के कमजोर पक्ष के रूप में देखा था। इसमें संकलित अधिकांश निबंध सन् 1930 के दशक में प्रसिद्ध पत्रिका 'चाँद' के सम्पादकीय लेख के रूप में प्रकाशित हुए थे। बाद में सन् 1942 में यह सारे निबंध एक स्वतंत्र निबंध संग्रह के रूप में 'शृंखला की कड़ियाँ' के नाम से सुधी पाठकों के सामने उपस्थित हुए। तब तक नारीवाद आंदोलन को प्रेरित और प्रभावित करने वाली विश्व प्रसिद्ध 'सिमोन-द-बोउआर' की पुस्तक 'द सेकेण्ड सेक्स' अस्तित्व में नहीं आई थी। वह 1949 ई. में फ्रेंच भाषा में छपी और अंग्रेजी में 1953 ई. में उसका अनुवाद हुआ। इस परिप्रेक्ष्य में महादेवी वर्मा की प्रगतिशीलता स्त्री-चिंतन के रूप में प्रकट हुई जिसे उनके निबंध संग्रह 'शृंखला की कड़ियाँ' में सहज रूप में अनुभूत किया जा सकता है। महादेवी स्त्री-अस्मिता की तत्कालीन संदर्भों में एक गहन चिंतक थीं। जिसका प्रमाण उनका सम्पूर्ण साहित्य भी है। ऐसे में आश्चर्य होता है

जब हम देखते हैं कि हिंदी आलोचना जगत महादेवी वर्मा की इस अति महत्वपूर्ण कृति से लम्बे समय तक अनभिज्ञ रहा साथ ही उनकी कविताओं पर भी रहस्यवाद की मुहर लगाकर एक गढ़ी हुई टोकरी में डाल देता है।

उनकी विद्वता का प्रमाण उनके निबंध 'श्रृंखला की कड़ियाँ' रूप में आज हमारे सामने वर्तमान हैं। यह ग्यारह निबंधों का संकलन, उस समय की स्त्री संबंधी तमाम समस्याओं और स्त्री से जुड़े तमाम दार्शनिक पक्षों को प्रस्तुत करता है। इस रूप में उन्होंने तत्कालीन स्त्री-समस्या– अशिक्षा, अंधविश्वास जैसी तमाम कुरीतियों और महत्वपूर्ण कानूनों की भूमिका से स्त्री का साक्षात्कार कराया है। इसमें संकलित निबंधों का विषय स्त्री-चिंतन की दृष्टि से अपने-आप में इतना गंभीर है, जिसे भारतीय स्त्री विमर्श के रूप में भी देखा जा सकता है। वह स्त्री प्रश्नों एवं समस्याओं को किसी एक समस्या तक सीमित नहीं रखती हैं, उसका व्यापक फ़लक है जिसमें वह तत्कालीन समस्याओं की प्रतिक्रिया स्वरूप स्त्रियों की आवाज को वैचारिक पृष्ठभूमि प्रदान करती हैं।

3.1 'श्रृंखला की कड़ियाँ' निबंधों का विवेचन: स्त्री चिंतन की एक भूमिका

भारतीय स्त्री विमर्श पर काफी वाद-विवाद और संवाद हो रहे हैं। इन सब विवादों में नहीं उलझते हुए यह समझना आवश्यक है कि स्त्री विमर्श भारतीय स्त्रियों द्वारा यहाँ की चिंतनधारा की उपज है। भारत में स्त्री चिंतन थेरी गाथाओं से लेकर अंडाल और मीरा से होता हुआ महदेवी वर्मा और बाद में मैत्रेयी पुष्पा तक आता है। मैत्रेयी पुष्पा के शब्दों में स्त्री विमर्श को देखें तो इस प्रकार है- "स्त्री विमर्श' पुरुष के प्रतिरोध या प्रतिशोध का विमर्श नहीं है। यह पुरुष में एक सहयोगी की भूमिका की

तलाश का विमर्श है। धर्म और परंपरा ने स्त्री को कमजोर बनाया है और यह धर्म और परंपरा पुरुष प्रधान समाज ने उस पर थोपी है।”[56] यही है भारतीय परंपरा का स्त्री चिंतन जो बिना प्रतिशोध के स्त्री अधिकारों और उन्हें समझने की बात करता है। महादेवी वर्मा का स्त्री चिंतन यही है वह अपने निबंधों में उन तमाम प्रश्नों को उठाती हैं जिन्हें इस पुरुष समाज को समझना है।

‘हमारी श्रृंखला की कड़ियाँ’ शीर्षक निबंध में महादेवी वर्मा ने स्त्रियों को समाज में अपना स्थान निर्धारित करते हुए उन्हें एक तरफ प्रगतिशील बनने की मंत्रणा देती हैं तो दूसरी तरफ वह संघर्ष की तरफ बढ़ते हुए पुरुषों से कंधे से कंधा मिला कर चलने की बात करती हैं। लेकिन महादेवी का यह संदेश एक ओर तो स्त्रियों में उत्साह भर देता है लेकिन क्या वास्तव में कंधे से कंधा मिलाकर चलने की भारत में स्त्री पृष्ठभूमि बन पायी है इस पर भी विचार करती हैं। वह सबसे पहले स्त्रियों को पराधीनता रूपी अपनी श्रृंखला की कड़ियों को तोड़ने की बात से अवगत कराती हैं। महादेवी स्त्री-संघर्ष को केंद्र में रखते हुए तथा अन्य स्त्रियों के लिए संदेश निर्मित करते हुए लिखती हैं कि– “अपने कर्तव्य की गुरुता भली-भांति हृदयंगम कर यदि हम अपना लक्ष्य स्थिर कर सकें तो हमारी लौह-श्रृंखला हमारी गरिमा से गलकर मोम बन सकती हैं, इसमें संदेह नहीं।”[57] यहाँ जिस गरिमा की बात महादेवी कर रहीं हैं वह भारतीय स्त्री की शक्ति और क्षमताओं की तरफ इशारा कर रही है। वह स्त्री की पराधीनता के संघर्ष को दृढ़ निश्चय से जीतने की बात करती हैं।

---

[56] मैत्रेयी पुष्पा, www.patrika.com/special-news/i-tried-to-shape-the-woman-with-her-whole-personality-1706765/

[57] वर्मा, महादेवी, श्रृंखला की कड़ियाँ, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या - 26

आज के समय में समाज तथा सामाजिक दोनों व्यक्ति सापेक्ष शब्द बन गए हैं। मनुष्य के व्यापक विकास एवं सुरक्षा के लिए समाज का आविर्भाव हुआ है तथा समाज के विकास तथा व्यक्ति के लिए अधिकार एवं सुविधाएं निर्धारित की गयी लेकिन स्त्री को इन अधिकारों एवं सुविधाओं से वंचित रखा जाता रहा है। जिसे महादेवी अपने इस निबंध के माध्यम से समस्त स्त्रियों को नागरिकत्व-बोध कराती हैं। नागरिक होने कारण स्त्री को भी राजनीतिक और सामाजिक दोनों क्षेत्रों में अधिकारों की आवश्यकता सदा से रही है किन्तु कई स्त्रियाँ अब भी इससे अनभिज्ञ हैं, यही भारतीय स्त्रियों की पराधीनता का सूचक और उनकी अविकसित स्थितियों का अवरोधक है। इसी संदर्भ में महादेवी इस निबंध में लिखती हैं –"राजनीतिक अधिकारों से भी पहले उसे ऐसी सामाजिक व्यवस्था की आवश्यकता है जिससे उसके जीवन में कुछ स्वावलम्बन, कुछ आत्म-विश्वास आ सके। उसकी दुर्बलताएँ अनेक हैं और सांसारिक संघर्ष घोरतर।"[58] स्त्री-पुरुष वैषम्य के प्रति महादेवी जी ने आवाज़ उठाती हैं और प्रत्यक्ष रूप से आग्रह करती हैं कि स्त्री को पुरुष के समकक्ष सभी अधिकार प्राप्त होने चाहिए।

इस कृति की दूसरे निबंध **'युद्ध और नारी'** के अंतर्गत लेखिका ने यह आक्रोश व्यक्त किया है कि – "पुरुष का जीवन संघर्ष से आरंभ होता है और स्त्री का आत्मसमर्पण से।"[59]

इसके पीछे कौन सी सत्ताएँ काम करती हैं, उसका भी विश्लेषण करती हैं। पुरुष समाज ने कैसे युद्ध और हिंसा के द्वारा दुनिया पर आधिपत्य जमा रखा है जबकि स्त्री

---

[58] वर्मा, महादेवी, श्रृंखला की कड़ियाँ, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या -24

[59] वही, पृष्ठ संख्या -27

ने हिंसा के मार्ग को न अपनाकर उसके स्थान पर करुणा और ममता से इस सृष्टि के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। पुरुष में एक तरह का युद्ध प्रेम होता है लेकिन स्त्री का कार्य समर्पण में निहित रह जाता है। युद्ध में हमेशा मानवाधिकारों का हनन होता है। सबसे अधिक स्त्रियों के अस्तित्व, व्यक्तित्व और मानवीय अधिकारों का हनन पुरुष समाज करता आ रहा है। दुनिया-भर की पितृसत्तात्मक व्यवस्था के अंतर्गत युद्ध में स्त्री की दो ही भूमिकाएं रही हैं; एक तो सैनिक पैदा करने वाली माता की और दूसरी सैनिकों की यौन भूख मिटाने वाली वेश्या की। इसलिए महादेवी वर्मा ने युद्ध को पूरी तरह स्त्री-विरोधी मानते हुए लिखा है कि युद्ध-काल में स्त्री सम्पूर्ण स्त्री कभी नहीं बन सकती। इस प्रकार युद्ध से हमेशा स्त्री का अवमूल्यन हुआ है और उसकी बेकद्री की गई है। स्त्री का महादेवी ने जो विश्लेषण किया वह आज एक प्रचलित अवधारणा 'इको-फेमिनिज़्म' की दृष्टि से मिलता है।

महादेवी लिखती हैं कि स्त्री के त्याग को पुरुष ने सदैव उसकी दुर्बलता माना है। जबकि स्त्री जगत-जननी रही है। वह सृष्टि की निर्माता रही है उसे सृष्टि का संहारक बनना प्रिय भी नहीं है। इन सब कारणों से स्त्री की अपनी शक्ति को नहीं पहचानने दिया गया। उसे सिर्फ यही बताया गया कि तुम्हारी नियति में पुरुष की सेवा करना है। उसे कष्ट सहने का अभ्यास कराया गया और स्त्री ने कर लिया जिसका परिणाम उसकी आज की दशा है। जो निर्जीव प्राणी सी बन गयी है।

'नारीत्व का अभिशाप' निबंध में लेखिका ने स्त्री की पितृ-गृह में दुर्दशा तथा पति-गृह के शोषण का दिग्दर्शन कराते हुए स्त्री को उसकी स्थिति से चेताने का कार्य किया है। भारतीय संस्कृति का आधार पर एक स्त्री पितृ-गृह में .....भर होती है, पति-गृह में बंदिनी। पति की मृत्यु के उपरांत उसका कोई अस्तित्व ही नहीं रह जाता।

महादेवी के अनुसार इन तमाम दुखों से स्त्री को मुक्त करने के लिए एक राष्ट्रीय आंदोलन की आवश्यकता है। जिसे वह इस माध्यम से सामने रखतीं हैं – "इस समय आवश्यकता है एक ऐसे देशव्यापी आंदोलन की जो सबको सजग कर दे, उन्हें इस दिशा में प्रयत्नशीलता दे और नारी की वेदना का यथार्थ अनुभव करने के लिए उनके हृदय को संवेदनशील बना दे जिससे मनुष्य जाति के कलंक के समान लगने वाले इन अत्याचारों का तुरंत अंत हो जाए, अन्यथा नारी के लिए नारीत्व अभिशाप तो है ही।"[60]

'श्रृंखला की कड़ियाँ' में महादेवी वर्मा आधुनिक नारी की स्थिति पर भी विचार करती हैं, जिसकी विस्तारपूर्वक व्याख्या **'आधुनिक नारी'** नामक निबंध में की गयी है। उनके अनुसार स्त्री ने अपने असंतोष में पुरुष से अपने अंतर को ही अपनी दयनीय दशा का मूल समझा है। आधुनिक नारी ने इस प्रतिक्रिया में अपनी भावुकता छोड़ी है और गृह-बंधनों को तोड़ा है। आधुनिक पश्चिमी नारी स्वतंत्र है और पुरुष आश्रित नहीं, पर उसमें भी दुर्बलताएँ हैं। वह पुरुष को नीचा दिखाने का प्रयास करती है लेकिन उसे आकर्षित करने के लिए श्रृंगार भी करती है। वास्तव में उसके अंदर की चिरन्तन नारी नहीं बदली है। भारतीय स्त्री की उहापोह यह है कि वह पुरुष का विरोध करके अपना अधिकार प्राप्त करना तो चाहती है किन्तु उसकी नारीत्व की भावना उसे रोकती भी है। महादेवी वर्मा के स्त्री संबंधी विचारों में स्त्री-चिंतन का विचार महत्व रखता है।

---

[60] वर्मा, महादेवी, श्रृंखला की कड़ियाँ, लोकभारती प्रकाशन, 2015, पृष्ठ संख्या -37

महादेवी 'आधुनिक काल' में स्त्रियों को तीन श्रेणियों में रखकर चर्चा करती हैं-

- राजनीतिक आंदोलनों में पुरुष की सहायता करने वाली स्त्रियाँ
- शिक्षित एवं आजीविका हेतु कार्यरत महिलाएँ
- शिक्षित गृहणियाँ।

उनके अनुसार भारतीय स्वाधीनता संग्राम में स्त्री का योगदान महत्वपूर्ण है। आधुनिक भारतीय नारी वहीं से प्रेरणा ग्रहण करती है।

श्रृंखला की अगली कड़ी के रूप में लेखिका **'घर और बाहर'** शीर्षक से निबंध लिखती हैं। जिसमें उन्होंने बताया है कि आज स्त्री घर तक सीमित नहीं है, अस्मिता बोध के चलते आज अधिक स्वतंत्र है। आज के परिपेक्ष्य में स्त्री बाहर की दुनिया के उत्तरदायित्व को संभालना चाहती है। महादेवी वर्मा को बनारस में संस्कृत पढ़ने से मना किया गया था। यह विचार उनके संघर्ष से निकल कर आए हैं। स्त्री की क्षमताएँ सीमित नहीं हैं उसकी क्षमता यह है जो भी काम इंसान कर सकता है वह एक स्त्री कर सकती है। महादेवी घर और बाहर के बीच सामंजस्य स्थापित करना अनिवार्य समझती है। यह उनके युग की सीमा है कि स्त्री को सक्षम होने के लिए प्रमाण देना पड़े जिसमें वह घर के साथ बाहर का भी काम देखे। पुरुष क्यों नहीं घर का काम देख सकता। उनके अनुसार घर और बाहर भी ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ स्त्रियों के सहयोग की आवश्यकता है, जैसे- शिक्षा, साहित्य आदि। जहाँ एक ओर महादेवी स्त्रियों को घर से बाहर कदम रखने के लिए प्रेरित करती है, स्त्री-अस्मिता एवं महत्व से साक्षात्कार कराती हैं, वहीं उनके स्त्री-चिंतन की सीमाएँ भी देख सकते हैं जब वह लिखती हैं – "एक विशेष अवस्था तक बालक-बालिकाओं को स्नेहमयी शिक्षिकाओं का सहयोग

जितना अधिक मिलेगा, हमारे भावी नागरिकों का जीवन उतने ही अधिक सुंदर साँचे में ढलेगा।"[61] बहरहाल, जब महादेवी **'हिंदू स्त्री का पत्नीत्व'** शीर्षक निबंध लिखती हैं तब वह नारी को उसकी निरक्षरता, बंदिनी, सहयोगी जैसे जीवन और व्यवहारिक विषमतापूर्ण स्थिति से परिचय करवाती हैं। इसमें बताया गया है कि हिन्दू स्त्री का पत्नीत्त्व महत्वपूर्ण माना जाता है। माता-पिता पुत्री का विवाह करना अपना परम दायित्त्व मानते हैं। विवाह के समय उसे पशु की तरह जाँचा-परखा जाता है। इतना ही नहीं पुरुष उसे ब्याहने के लिए दहेज भी माँगता है। वास्तव में स्त्री का स्वावलंबन ही इस समस्या का समाधान है।

'जीवन का व्यवसाय' में उनके विचार भावानुकूलतापूर्वक पुरुष की वासना वेदी पर स्त्री-देह का त्याग एवं समर्पण को व्यक्त करती है। उनके अनुसार पुरुष ने कभी स्त्री को उचित सम्मान दिया ही नहीं। कभी उसे देवी कहकर मूर्त रूप दिया, तो कभी नृत्य कराकर मनोविनोद की वस्तु समझा एवं कभी पतिता कहा। स्त्री अपनी देह का व्यापार स्वेच्छा से नहीं करती इस बात की ओर वे समाज का ध्यान आकर्षित करती है। पुरुष पतित से पतित भी हो तो भी वह स्त्री के चरित्र का न्यायकर्ता बन जाता है। पारंपरिक भारतीय समाज में स्त्री की विडंबना एवं दयनीय स्थिति को महादेवी अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करती हैं।

'स्त्री-के अर्थ-स्वातंत्र्य का प्रश्न' नामक निबंध, महादेवी के स्त्री-चिंतन को प्रखर रूप से अभिव्यक्त करता है। उनके अनुसार नारी परतंत्रता का मूल कारण अर्थ-स्वातंत्र्य का प्रश्न है। स्त्री, अर्थ के मामले में पत्नी, पुत्री, माता सभी रूपों में परमुखापेक्षी है। इस तरह महादेवी अर्थ की विषमता को ही स्त्री की दुर्दशा का मूल

[61] वर्मा, महादेवी, श्रृंखला की कड़ियाँ, लोकभारती प्रकाशन, 2015, पृष्ठ संख्या -55

कारण मानती है। शिक्षा के विषय पर बात करते हुए उन्होंने **'हमारी समस्याएँ'** निबंध लिखा है। वे लिखती हैं कि शिक्षा का उद्देश्य जोड़ना है मगर हमारे देश में यही विभाजन और आपसी-मतभेद का रूप ले रही है। यहाँ महादेवी जी ने अशिक्षित स्त्री की ओर ध्यान आकृष्ट करने का प्रयत्न किया है। यहाँ इन्होंने स्त्रियों का अपने ही वर्ग के अंदर शिक्षित एवं अशिक्षित के मध्य उत्पन्न समस्या को उजागर किया है, जो कि स्त्री की विकासोन्नति के मार्ग में अवरोधक बनाने का कार्य करती है। शिक्षित स्त्रियाँ मार्गदर्शक न बनकर मार्ग-दर्शकों की तलाश में हैं। शिक्षा से व्यापक दृष्टिकोण बनता तथा शिक्षित स्त्रियों को शोषित, अशिक्षित स्त्रियों का प्रतिनिधि बनना चाहिए। इस प्रकार महादेवी ने समाज में दोनों वर्ग की महिलाओं के लिए शिक्षा को महत्वपूर्ण माना है, अभिजात वर्ग से आने वाली स्त्रियों के लिए भी और श्रमिक वर्ग से आने वाली स्त्रियों के लिए भी। यही दृष्टि महादेवी और उनकी कृति 'श्रृंखला की कड़ियाँ' को उन समस्त नवजागरणकालीन स्त्री-चिंतन से अलग करती है जिनके विचार में स्त्री-शिक्षा के प्रति कुछ सीमाएँ थीं।

इसी तरह वह किसी भी परिवर्तन के लिए समाज और व्यक्ति के संबंधों को महत्वपूर्ण समझती हैं। उन्होंने **'समाज और व्यक्ति'** शीर्षक निबंध में बताया है कि व्यक्ति तथा समाज का संबंध एक दूसरे सापेक्ष कहा जा सकता है क्योंकि एक के अभाव में दूसरे की उपस्थिति संभव नहीं। इस प्रकार "समाज की दो आधारशिलाएं हैं, अर्थ का विभाजन और स्त्री पुरुष का संबंध। इनमें से यदि एक की भी स्थिति में विषमता उत्पन्न होने लगती है तो समाज का संपूर्ण प्रासाद हिले बिना नहीं रह

सकता।"[62] यहां फिर से महादेवी के स्त्री चिंतन का व्यावहारिक पक्ष खुलकर सामने आता है।

प्रत्येक कार्य के प्रतिपादन तथा प्रत्येक वस्तु के निर्माण में दो आवश्यक अंग– तद्विषयक विज्ञान और उस विज्ञान के क्रियात्मक प्रयोग को महत्व देते हुए जीने की कला। विषय से संबंधित इस कड़ी में महादेवी अंतिम निबंध लिखती हैं। जिसमें उन्होंने लिखा है कि – "जब तक बाह्य तथा आंतरिक विकास एक दूसरे के सापेक्ष नहीं बनते हम जीना नहीं जान सकते"[63]

इस प्रकार समग्रता में विश्लेषण करने पर हम पाते हैं कि इस कृति में स्त्री चिंतन का वृहद विश्लेषित रूप मौजूद है, जहां महादेवी ने मात्र स्त्री समस्या को ही उजागर नहीं किया अपितु समाधान पर भी विशेष बल दिया है।

वास्तव में 'श्रृंखला की कड़ियां' लिखने के तीन उद्देश्य थे– स्त्रियों को उनके अधिकार मिल सकें ताकि देश और समाज के प्रति वे अपनी भूमिका का निर्वहन कर सकें और समाज को प्रगति के मार्ग पर ले जाने में अपना सर्वोत्कृष्ट योगदान दे सकें। जो परिस्थितियां इस मार्ग में बाधक थी, महादेवी उनका उन्मूलन करना चाहती हैं। यह उद्देश्यों का रेखांकन महादेवी के लेखन में प्रतिबिंबित होता है जो स्त्री मुक्ति की आकांक्षा को समाहित किए हुए हैं। स्त्री के उन सब पहलुओं पर बात करती हैं जिन कारणों से स्त्री को पराधीन बना दिया गया है और इस पराधीनता का वह मुकम्मल जवाब देती हैं।

---

[62] वही, पृष्ठ- 115

[63] वही, पृष्ठ संख्या - 129

वस्तुतः 'श्रृंखला की कड़ियां' में महादेवी वर्मा भारतीय स्त्री चिंतन की ऐसी स्त्री दृष्टि का विकास चाहती हैं, जो न पुरुष दृष्टि की अनुगामिनी बने और न पुरुष दृष्टि बनने की कोशिश करें। महादेवी ऐसी दृष्टि का समर्थन करती हैं जो स्त्री को अपनी अस्मिता की पहचान कराए तथा विवेक का ऐसा सामंजस्य हो जिससे हृदय से स्नेह की वर्षा करते हुए भी वह किसी अन्याय को प्रश्रय न देकर उसके प्रतिकार में तत्पर रह सके। जब यह रचना लिखी गई तब से अब तक के समय में काफी कुछ बदलाव आ चुके हैं फिर भी महादेवी की 'श्रृंखला की कड़ियां' में निहित स्त्री चिंतन महज ऐतिहासिक परिपेक्ष्य के ही महत्व का दावा नहीं करती बल्कि यह आज भी प्रासंगिक है। इसमें भारतीय स्त्री की गुलाम बनाने वाली आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक प्रक्रियाओं से निर्मित जटिल व्यवस्था की कार्य पद्धति के विभिन्न रूपों का विश्लेषण है, जो आज भी सक्रिय है। आज यह 'स्त्री चिंतन' और 'स्त्री विमर्श' साहित्य, संस्कृति और राजनीति की चपेट में फलीभूत हो रहा है। इस संदर्भ में दूधनाथ सिंह लिखते हैं– "....लेकिन महादेवी ने जब स्त्रियों की समस्याओं पर सोचना लिखना शुरू किया तो उन्हें किसी तरह का प्रलोभन नहीं था। वह एक 'जेनुइन' मानसिक स्थिति थी। यह उनका सचेतनपन था जब उन्होंने 'श्रृंखला की कड़ियां' का अनुभव किया जिन कड़ियों को वे खुद तोड़ सकी थी उनकी दिली ख्वाहिश थी कि वे उनकी दूसरी संगिनियों के लिए भी टूटे। ये सारे आलेख इसी नैतिक-मानसिक, कर्तव्य-उद्वेलनों के प्रतिफल हैं।"[64]

महादेवी वर्मा की 'श्रृंखला की कड़ियां' में उल्लिखित निबंधों में न केवल समाज केंद्रित दृष्टि से नारी की ज्वलंत समस्याओं को साहित्य में रखा गया है बल्कि

---

64 सिंह, दूधनाथ, महादेवी, राजकमल प्रकाशन, 2011, पृष्ठ 93-94

तमाम समस्याओं के समाधान भी प्रस्तुत किए गए हैं। इस संदर्भ में मैनेजर पांडेय अपने लेख 'श्रृंखला की कड़ियां : मुक्ति की राहें' में लिखते हैं कि – "हिंदी में स्त्री-जीवन की वास्तविकता और कामनाओं का कलात्मक चित्रण करने वाली लेखिकाएं और भी हैं तथा स्त्री-स्वाधीनता का आंदोलन चलाने वाली कार्यकर्ताओं की भी कोई कमी नहीं है लेकिन भारतीय स्त्री-जीवन की जटिल समस्याओं उसकी दासता की दारुण स्थितियों और उसकी मुक्ति की दिशाओं का मूलगामी दृष्टि से जैसा विवेचन महादेवी वर्मा की पुस्तक 'श्रृंखला की कड़ियां' में है वैसा हिंदी में अन्यत्र कहीं नहीं हैं।"[65]

वस्तुतः 'श्रृंखला की कड़ियां' आधुनिक हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श को प्रारंभ करने वाली पहली पुस्तक है और पहली लेखिका महादेवी वर्मा। उनके स्त्री चिंतन को भारतीय स्त्री-चिंतन परंपरा में स्त्री दृष्टि से पहला प्रयास माना जा सकता है हालांकि 1882 ई. में नारी जागरण को उभारने वाली 'सीमंतनी उपदेश' की भी भूमिका स्त्री चिंतन परंपरा में 'श्रृंखला की कड़ियां' से कम नहीं है, लेकिन जहां 'सीमंतनी उपदेश' 19वीं सदी के शुरुआत में आए समाज सुधार के आंदोलन की उपज है तो वहीं 'श्रृंखला की कड़ियां' 19वीं सदी के अंतिम चरण में नारी जागरण की देन है।

'सीमंतनी उपदेश' हिंदू समाज में स्त्री की गुलामी और यातना के विभिन्न रूपों के व्यापक ज्ञान और अनुभवों के आधार पर लिखी गई किताब है। वहीं 'श्रृंखला की कड़ियां' भारतीय स्त्री समुदाय की अवायविक बुद्धिजीवियों को दर्शाती है। ज्ञान के

[65] मुक्ति की राहें, पृष्ठ - 123

आलोक में उन तमाम पुरानी संकीर्णताओं को, जो मनुष्य के स्वतंत्र विकास में बाधक थी, महादेवी ने दूर करने का प्रयास किया।

ग्राम्शी के अनुसार समाज में बुद्धिजीवी दो प्रकार के होते हैं, पेशेवर और अव्यवसायिक। प्रायः ज्ञान की एकांत साधना करने वाले पेशेवर बुद्धिजीवी होते हैं, लेकिन जो किसी वर्ग, समुदाय और समाज की जिंदगी की वास्तविकताओं और आकांक्षाओं की व्याख्या करते हुए उस वर्ग, समुदाय और समाज को इतिहास में अपनी स्थिति समझने और बदलने के लिए संघर्षरत करने की प्रेरणा देते हैं, वह अवायविक बुद्धिजीवी होते हैं। बुद्धिजियों के कर्तव्य की यह परिपाटी पूंजीवाद की प्रतिक्रिया स्वरूप दी गयी है। महादेवी वर्मा जिस समय और समाज में थी उसमें पूंजीवाद का संकट नहीं अपितु साम्राज्यवाद का संकट था। महादेवी के भीतर साम्राज्यवादी, सामंतवादी और पितृसत्ता से लड़ने की क्षमता थी और वह लड़ी भी।

उपसंहार

उपसंहार

महादेवी वर्मा कृत 'श्रृंखला की कड़ियाँ' को जब मैंने पढ़ना शुरू किया और जब इस विषय को लेकर लघु शोध-प्रबंध की योजना बनी तब मेरे मन में कई सवाल थे। पहला तो यह कि स्त्री विमर्श की दृष्टि से इतनी महत्वपूर्ण कृति कैसे स्त्री चिंतकों की दृष्टि से छूट गयी। इस कृति की जो महत्वपूर्ण बात है उनमें से पहली तो यह कि हिंदी की स्त्री-चिंतन सम्बन्धी आरंभिक दस्तावेजों में से एक है। दूसरी महत्ता इसकी ये है कि यह एक भारतीय स्त्री के स्वानुभूति से उपजी कृति है जो किसी भी तरह के पाश्चात्य प्रभाव से मुक्त है। यह बात मैं अन्यथा नहीं कह रही हूँ। वास्तव में हिंदी में हम जब भी स्त्री विमर्श पर बात करते हैं प्रायः सीमोन-द-बोउआर की 'द सेकंड सेक्स' से बात शुरू करते हैं और हिंदी साहित्य के स्त्री-विमर्श को उससे प्रेरित मानते हैं। ऐसा इसलिए कि हिंदी आलोचना में महादेवी की इस कृति पर गंभीरता से विचार नहीं हुआ। वास्तव में हिंदी साहित्य महादेवी वर्मा को छायावाद की आधार स्तंभ कवयित्री के रूप में जानता है तथा छायावाद को हम कविता के युग के रूप में ही देखते हैं अतः इस युग के गद्य पर भी हमारा ध्यान नहीं जाता है और इसी क्रम 'श्रृंखला की कड़ियाँ' पर भी हमारी दृष्टि नहीं जाती है।

महादेवी वर्मा की यह कृति 1942 ई. में संग्रहीत हुई जबकि इस संग्रह के अधिकांश लेख 1930 के दशक में 'चाँद' पत्रिका में सम्पादकीय के रूप में प्रकाशित हो चुके थे जैसा की पहले भी ज़िक्र किया जा चुका है। 'द सेकंड सेक्स' 1949 ई. में लिखी गयी जो पश्चिम के स्त्री-वादी साहित्य में बहुत महत्वपूर्ण कृतियों में गिनी गयी। भारत में इसका प्रभाव 70 के दशक में देखने को मिलता है। अतः हिंदी में स्त्री विमर्श पर बात करते हुए श्रृंखला की कड़ियाँ की उपेक्षा वास्तव में तथ्यों का भ्रामक रूप से प्रस्तुतिकरण है।

वास्तव में ‘श्रृंखला की कड़ियाँ’ का महत्व नवजागरण के समय में विकसित स्त्री-चिंतन के क्रम में है। उन्नीसवीं शताब्दी जिसे भारत का नवजागरणकाल कहा जाता है, इस काल में विकसित समाज-सुधार आंदोलन के क्रम में स्त्रियों की स्थिति पर इन समाज-सुधारकों का ध्यान जाता है और इसी समाज-सुधार आंदोलन के क्रम में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति सुधारने का भी एक अघोषित आंदोलन चलता है, जिसका प्रभाव हिंदी में भी नज़र आता है। भारतेंदु हरिश्चंद्र और उनके भारतेंदु मण्डल द्वारा स्त्री शिक्षा पर बल देते हुए बहुत से लिखे जाते हैं। भारतेंदु की ‘बालाबोधिनी’ इस क्रम में अप्रतिम प्रयास है। यह स्त्री सुधार सम्बन्धी सामाजिक आंदोलन द्विवेदी युग में भी विकास पाता है तथा द्विवेदी जी जब हिंदी नवजागरण को मराठी नवजागरण से जोड़ते हैं तब उनके सामने सावित्रीबाई फूले, पंडिता रमाबाई तथा ताराबाई शिंदे स्त्री चिंतकों के ‘पाठ’ मौजूद थे अतः द्विवेदी जी के स्त्री-चिंतन पर इन लेखिकाओं तथा समाज-सुधारिकाओं का प्रभाव था। हिंदी में यह स्त्री-चिंतन का प्रथम चरण था, जब पुरुष सुधारवादी विचारकों में स्त्री की सामाजिक-स्थिति में परिवर्तन सम्बन्धी चेतना विकसित होती है। किन्तु इस चरण में स्त्री-चिंतन स्त्री मुक्ति के सन्दर्भ नहीं विकसित अपितु पुरुष-सहयोगिनी के रूप में विकसित हुआ। इस काल में स्त्री-शिक्षा की चर्चा स्त्री को स्वावलंबी बनाने के लिए नहीं अपितु उसे ‘कुल धर्म’ सिखाने के लिए थी।

इस दौरान सन् 1882 में ‘सीमंतनी उपदेश’ नामक एक कृति लिखी गयी जिसकी लेखिका अपना नाम जाहिर नहीं करती तथा ‘एक अज्ञात हिन्दू औरत’ नाम से लिखती हैं। यहाँ हम पुरुष सत्ता की सघनता का अंदाज़ा लगा सकते हैं कि एक स्त्री लेखन कार्य नहीं कर सकती और यदि करती भी है तो वह प्रकाशित नहीं हो सकती। यूरोप में भी देखा जाए तो आरम्भ में स्त्री उपन्यासकारों को नाम बदलकर लिखना पड़ता था। जेन ऑस्टेन इसका प्रबल उदाहरण है।

जेन ऑस्टेन भी अपनी कृतियाँ 'एक औरत' के नाम से प्रकाशित करवातीं थी। बहरहाल 'सीमंतानी उपदेश' प्रकाशित तो हुई किन्तु कालांतर में वह लुप्त हो गयी।

महादेवी की यह कृति 1942 ई. में प्रकाशित हुई तथा यह लेख 30 के आस-पास विचार रूप में लिखे जा चुके थे। 'शृंखला की कड़ियाँ' में संग्रहीत यह निबंध नवजागरणकालीन स्त्री-चिंतन को एक नया आयाम देती हैं। अपनी इस कृति के माध्यम से महादेवी स्त्री प्रश्नों की एक नई दिशा तय करती है जहाँ वह न केवल स्त्री की स्वतंत्र अस्मिता की बात करती हैं अपितु उसके अस्मिता को स्वतंत्र बनाये रखने के लिए जिन घटकों की आवश्यकता है उन पर भी विस्तार से चर्चा करती हैं। इस निबंध में वे स्त्रियों की स्थिति पर क्रमिक रूप में विचार करती हैं। सबसे पहले निबंध में महादेवी स्त्रियों को पराधीनता से मुक्त होने को कहती हैं। उनके अनुसार पराधीनता रूपी शृंखला की कड़ियों को तोड़ना स्त्रियों की स्त्री अस्मिता को बनाये रखने की पहली सीढ़ी है। महादेवी अपने इन निबंधों के माध्यम से नवजागरण के अंतर्विरोधों को रेखांकित करती हैं। हिंदी के नवजागरणकालीन स्त्री चिंतकों की उपलब्धियों पर सवाल खड़ा करती हैं। वास्तव में नवजागरणकाल में स्त्री-मुक्ति का सवाल मूल सवाल था ही नहीं अपितु हिन्दू समाज की जीर्ण-शीर्ण स्थिति को सुधारने के लिए समाज को बदलते हुए एक तरह का अनुकूलन था। यही कारण रहा कि हिंदी समाज में स्त्री-चेतना उस मजबूती के साथ नहीं मिलती जैसा यूरोपीय स्त्री आंदोलन में हम देखते हैं। इसके साथ ही आज भी यदि हिंदी समाज स्त्री को उसके स्वतंत्र अस्तित्व के साथ नहीं स्वीकार पाया तो उसका यही कारण है। महादेवी वर्मा का स्त्री-चिंतन नवजागरण-प्रसूत स्त्री-चिंतन नहीं है अपितु स्त्री की विषम परिस्थितियों से अनुभूत स्त्री-चिंतन है। वास्तव में महादेवी के इन पक्षों पर हिंदी आलोचकों का ध्यान नहीं जाता है। बहरहाल हिंदी नवजागरण और स्त्री-चिंतन की परंपरा में जो महादेवी की उपेक्षा है उसे तो मैं

पूर्णतः दूर नहीं कर सकती लेकिन मेरा ये विनम्र विश्वास है कि मेरे इस शोध से संभव है हिंदी नवजागरण और स्त्री-चिंतन के क्षेत्र में काम करने वाले लोग महादेवी पर ध्यान देंगे।

सन्दर्भ - सूची

संदर्भ-सूची

आधार ग्रंथ :

1. वर्मा, महादेवी, श्रृंखला की कड़ियाँ, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद,2015

संदर्भ ग्रंथ :

1. बल, डॉ मीरा रानी, राष्ट्रीय नवजागरण और हिंदी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली,1994
2. डॉ अमरनाथ, हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,2015
3. सिंह, रामधारी दिनकर, पंत, प्रसाद और मैथलीशरण गुप्त,
4. सिंह, रामधारी दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2011
5. पाठक, गजेन्द्र, हिंदी नवजागरण, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2005
6. तलवार, वीरभारत, रस्साकशी, सारांश प्रकाशन, दिल्ली, 2012
7. सक्सेना, डॉ प्रदीप, 1857 और भारतीय नवजागरण, आधार प्रकाशन, पंचकूला, 1996

शर्मा, रामविलास, निराला की साहित्य साधना खंड-2,

8. शर्मा, रामविलास, भारतेंदु हरिश्चंद्र और हिंदी नवजागरण की समस्याएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014

9. शर्मा, रामविलास, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004

10. शर्मा रामविलास, भारतीय नवजागरण और यूरोप, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली, दिल्ली,1996

11. वर्मा, महादेवी, साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1970

12. कुमार, राधा, स्त्री संघर्ष का इतिहास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1973

13. शिंदे, ताराबाई, स्त्री-पुरूष तुलना, संवाद प्रकाशन,

14. मदुरेश(सं.), भाग्यवती, यश पब्लिकेशन, दिल्ली, 2012

15. महावीर प्रसाद द्विवेदी रचनावली-7,

16. वाजपेयी, आचार्य नंददुलारे, हिंदी साहित्य बीसवीं शताब्दी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2007

17. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, हिंदी साहित्य उद्भव और विकास, राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली, 1987

18. सिंह, दूधनाथ, महादेवी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011

19. बालबोधिनी,संपादक-भारतेंदु हरिश्चंद्रएसंकलन-संपादनः वसुधा डालमिया, संजीव कुमार, राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, 2014

पत्रिकाएँ :

1. समकालीन भारतीय साहित्य (मई-जून 2013), पाण्डेय, मैनेजर (रामविलास शर्मा और हिंदी नवजागरण)
2. आलोचना (जनवरी-मार्च 2001), हरिश्चंद, भारतेंदु (भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है ?)
3. कथादेश (अक्तूबर 2004), अरोड़ा, सुधा, (एक विद्रोहिणी कवयित्री के सामाजिक सरोकारों का पुनर्पाठ)
4. पाण्डेय, डॉ. मैनेजर, अनभै साँचा, पूर्वोदय, दिल्ली, 2002
5. आजकल (पत्रिका), वर्मा, महादेवी, आज खरीदेंगे ज्वाला में, मार्च, 2007

वेब संदर्भ :

1. http://www.hindisamay.com
2. http://www.philoid.com
3. http://samalochna.blog-post.com
4. http://www.patrika.com
5. http://kavitakosh.org/kk

सहायक ग्रंथ :

1. परमार, शुभ्रा,नारीवादी सिद्धांत और व्यवहार, ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2015
2. डॉ. धर्मवीर, सीमंतनी उपदेश: एक अज्ञात हिन्दू औरत, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008
3. बोउवार, द सीमोन, स्त्री: उपेक्षिता,हिन् पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2004
4. राजे, सुमन, इतिहास में स्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2012

शोध-कार्य के दौरान

प्रस्तुत

शोध-आलेख

का

प्रमाण-पत्र